

# परीक्षामुखसूत्रप्रबचन

[ चतुर्दश भाग ]

प्रवक्ता :—

श्री १०५ कुलक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

विशुद्ध ज्ञानोत्पत्तिरूप मोक्षका प्रसङ्ग — अब इस प्रसङ्गमें ज्ञानाद्वैतवादी जो क्षणिक सिद्धान्तको मानते हैं, बौद्धोंका एक भेद है ऐसे ज्ञानाद्वैतवादी यहाँ अपना मंतव्य रख रहे हैं कि मोक्ष नाम है विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होनेका । लेखिए ! सुनने में तो भला लग रहा है कि सही बात है । जहाँ विशुद्ध केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है उस में तो भला लग रहा है कि सही बात है । लेकिन शङ्काकारके सिद्धान्तका विशुद्ध ज्ञान है कैसा ? विशुद्ध ज्ञान का नाम मोक्ष है, लेकिन शङ्काकारके सिद्धान्तका विशुद्ध ज्ञान है कैसा ? श्रीर यही पूरा द्रव्य है ऐसे उस विशुद्ध ज्ञानस्वरूप पदार्थकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष है इस विशुद्ध ज्ञानके जगनेपर संतानका भ्रम नहीं रहता है । इस सिद्धान्तके अनुसार ज्ञान-ज्ञान पदार्थ अनन्त उत्पन्न होते रहते हैं क्रमसे । अब उनमें जो भ्रम बन गया हो कि मैं वही हूँ जो कल था व इसी भ्रमके कारण इस पूर्व ज्ञानमें ऐसा अतिशय हो गया है कि पूर्व ज्ञान उत्पन्न होते ही नष्ट हो होकर अपना सारा चार्ज अगले ज्ञानको दे देता है और इसी कारण अगला ज्ञान पूर्वकी घटनाओंका स्मरण कर लेता है और इसी रूप मानता है कि मैं ही तो हूँ, वह जो कल था, लेकिन क्षणिकवादमें क्षण-क्षणमें नवीन-नवीन पदार्थकी उत्पत्ति होती है । वहाँ पदार्थ स्थायी ही ही नहीं । तो ऐसे अस्थायी विशुद्ध ज्ञान पदार्थमें संतानका भ्रम करनेका नाम संसार है । और, जब संतानिका भ्रम न करे, एक विशुद्ध केवल क्षणमात्र होने वाले ज्ञानकी उस ही रूप ब्रह्म जान ले तो उस ज्ञानक्षणके बाद चूँकि आगे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता सो उस विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है ।

रागादिमान विज्ञानसे रागादिरहित (विशुद्ध) ज्ञानकी उत्पत्तिकी अवश्यकताका वैशेषिकों द्वारा कथन — उक्त प्रकारसे विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति मोक्ष

बताने वालेके प्रति वैशेषिक कह रहे हैं कि यह मोक्षका स्वरूप नहीं बन सकता। क्यों नहीं बन सकता? रागादिकस हत ज्ञानसे रागादिकरहित ज्ञानकी उत्तरति संभव नहीं है। यहाँ संसार अवस्थामें ज्ञान रागादिसहित है ना, सब जीवोंका ज्ञान देख लो, सबके साथ राग जुड़ा हुआ है। तो रागमहित ज्ञानसे रागरहित ज्ञानकी उत्तरति नहीं हो सकती। एक दोष तो यह आता है। दूसरा दोष यह है कि जिस पूर्व बोधसे आगे ज्ञानमें जो बोधरूपता आई, ज्ञानपना आया तो जिस तरह एक बोधसे, एक ज्ञानसे आगले ज्ञानमें ज्ञानरूपता आ जाती है उसी प्रकार पूर्वज्ञानके साथ रहे हुए रागकी रूपता आनेसे उत्तर ज्ञानमें रागादिकका भी तादात्म्य हो जायगा। जैसे आगले बोधमें अलले ज्ञानमें ज्ञानरूपताका तादात्म्य ही गया क्योंकि उससे पहिले ज्ञनमें ज्ञानरूपता थी तो उससे पहिले ज्ञानमें सरागता भी थी। तो ज्ञानमें रागका तादात्म्य हो जाना चाहिए। यदि रागादिक न हों तो फिर सरागताका भी अवश्य मानना चाहिए।

बोधसे बोधरूपता होनेकी अशक्यताका वैशेषिकों द्वारा विवरण—  
 विशुद्ध ज्ञानोत्तरतिको मोक्ष माननेमें तीतरी आवश्यक यह है कि ज्ञानसे ही ज्ञानरूपता उत्पन्न होती है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि जो भी कार्य प्रब्रह्म तक उत्तरन्न हुए देखे गए हैं वे विलक्षण कारणसे उत्पन्न हुए देखे गए हैं। ज्ञानसे ज्ञानकी उत्तरति हुई इसमें तो कारण भी वही हुआ। और कार्य भी वही हुआ, लेकिन लोकमें कार्य विलक्षण कारणसे उत्पन्न हुए देखे जाते हैं। देखो ना, घुवां अग्निसे उत्पन्न हता है तो घुर्वा, और अग्निमें कितना कफ़ है? घुवेमें गर्भ नहीं, घुवेमें कालायन है, गिर्डलाता है, भापकी तरह उड़ता है और अग्निमें देखो घुवेसे बिल्कुल विशुद्ध बातें पायी जाती हैं। घुवांमें गर्भ नहीं, अग्निमें गर्भ है, घुर्वा अन्वकाररूप है तो अग्नि प्रकाशरूप है। घुवा भाप जैसा है, अपिष्ठ है तो अग्नि गिर्डला है। तो विलक्षण कारणसे ही तो कार्य देखा गया। और भी देख लो —बीजस अकुर उत्पन्न होता है तो गेहूँका दाना, उसकी कथा शक्ल है और अंकुरकी कथा शक्ल है। विलक्षण हुए ना दोनों। तो कार्य विलक्षण कारणसे उत्पन्न होते ही तो यह कहना कि बोधसे बोधरूपता होती है, ज्ञानसे ही ज्ञानरूपता होती है इसमें कोई प्रमाण नहीं रहा।

विशुद्ध ज्ञानकी उत्तरतिमें स्थाद्वादका अभिमत उक्त प्रकार वैशेषिकोंने विशुद्ध ज्ञानकी उत्तरतिरूप मोक्षके लण्डनमें जो उत्तर दिया है उसके बाद अब स्थाद्वाद से उसका निराण्य सुनो। क्षणिकवादके माने गए विशुद्ध ज्ञान के स्वरूपसे तो स्थाद्वाद सहस्रत नहीं है, वहाँ एक-एक समयका एक-एक ज्ञान चलता, पूरा पूरा पदार्थ है, और उसकी कोई संतति ही मानी जाती है, वास्तविक आधाररूप कोई पदार्थ नहीं माना जाता है। ऐसे विशुद्ध ज्ञानकी तो कोई सत्ता नहीं है, लेकिन विशुद्ध ज्ञानका यह अर्थ किया जाय कि जो ज्ञान विशुद्ध हुआ है, जिसमें रागादिक मलिनता नहीं है, ऐसे विशुद्ध ज्ञानके उत्तरन्न होनेका नाम मोक्ष है, तो यह तो युक्त ही है, इसमें स्थ द्वादको

विरोध नहीं है और तब यह प्रश्न उठाना कि रागादिमान ज्ञानसे रागादिरहित ज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है तो यह बात तो वैशेषिकोंके उत्तरसे ही विश्व बैठती है। अभी अभी तो वैशेषिकोंने यह कहा कि विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य होता है तो रागादि वाला विज्ञान विलक्षण रहा ना, रागादिरहित विज्ञानके मुकाबलेमें तो सराग ज्ञानसे विरागज्ञानकी उत्पत्तिमें क्या विरोध है और फिर अनुभव और युक्तियों से सोच लो, ज्ञानका स्वरूप राग तो नहीं है। रागमें जो बात दिखती है वह ज्ञानमें नहीं है। रागमें जो बात दिखती है वह ज्ञानमें कहां है। ज्ञानमें मात्र जाननहारपना है। तो जो जिसका स्वरूप नहीं है वह कदाचित् साथ लगा हुआ हो तो उपायोंसे वह दूर किया जा सकता है। जिसका तादात्म्य हो वह तो दूर नहीं किया जा सकता। जैसे अग्निमें उषण्टाता तादात्म्यरूपसे रहती है तो अग्निमेंसे उषण्टाका विनाश नहीं किया जा सकता। उषण्टातारहित अग्नि नहीं बन सकती, किन्तु जलमें जो गर्मी है वह तो श्रीगविक है, जलके स्वरूपवाली नहीं है। जलकी गर्मी उपायोंसे दूर की जा सकती है। तो जलकी गर्मी जी ही भाँति ज्ञानमें रागादिक सद्ग्राव है, वह श्रीगविक है, स्वरूपसे निराला है इस कारण उपायसे ज्ञानके साथ रहने वाला राग दूर किया जा सकता है। रागादिमान विज्ञानसे रागरहित विज्ञान बन सकता है।

विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्यकी हठ करनेमें अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति होनेका प्रसङ्ग—अब देखिये जब अद्वैतादियोंकी शारीरसे कथन आया कि बोधसे बोधपता उत्पन्न होती है। और, उनकी यह गति यथार्थ भी है कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता उत्पन्न होती है। ज्ञानसे ज्ञान होगा कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता ही बनेगी। तो इस सम्बन्धमें फिर यह कहना पड़ा वैशेषिकोंको कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता नहीं हो सकती, क्योंकि विलक्षण कारणसे कार्य होता है। तो लो इस सम्बन्धमें सुनिए—यदि यह एकांत मान लोगे कि विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य होते हैं, तो अचेतन शरीरसे चेतनकी उत्पत्ति भी माननी पड़ेगी। तब आत्माका उच्छेद हो जाएगा चाहवाकमतका प्रसङ्ग आ जायगा। बात तो यह कि कार्यादिके सम्बन्धमें सही दोनों ही बातें हैं। विलक्षण कारणसे भी विलक्षण कार्य होते हैं और समान कारणसे भी समान कार्य होते हैं। मिट्टीसे घड़ा बना तो लो, समान कारणसे समान कार्य बना ना। अग्निसे कुर्वा हो चला यह विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य हो गया, पर एकांत तो कुछ नहीं रहा। जहाँ जो बात संगत हो वहाँ वह बात लगानी चाहिए। तो विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्यकी उत्पत्तिका हठ करनेपर यह दोष आया कि फिर अचेतन शरीरसे चेतन भी उत्पन्न होने लगें।

अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति माननेमें विडम्बना—अब यहाँ चाहवाक खुश होकर कहता है कि वाह-वाह अच्छी बात कही। बात तो यही है कि अचेतन शरीरसे चेतनकी उत्पत्ति होती है। चेतन कोई शाश्वत वस्तुभूत पदार्थ नहीं है।

जहाँ, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतोंका संयोग हो वहाँ चैतन्यकी उत्पत्ति होती है। तो इस प्रसंगमें श्रविक न कहकर केवल उन चारुवाकोंसे इतना ही कहना है कि यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके सम्बन्धसे जीव उत्पन्न होने लगे तो रसोईचरमें प्रायः रोज भोजन बनता है। किसीने मिट्टीकी हाँड़ोंमें कढ़ी पकाई हो तो वहाँसे पशु-पक्षी मनुष्यादिक खुब निकल बैठे क्योंकि वहाँ पृथ्वी तो ही ही, मिट्टीकी हाँड़ी है ना, और पानी उनके भीतर है ही, तेज अग्नि भी मिल रही है और हवा भी उसके अदर भरी है। हृषीभर कोई ढक्कन रख दिया जाय तो हवाके ही कारण वह ढक्कन अनग फिक जाता है। जब ये चारों छींजे वहाँ मिल गई तब नो हाथी, शेर छीता, आदिक जानवर घड़ाधड़ निकल पड़ना चाहिए, क्योंकि तुमने चारभूतोंसे चेतनकी उत्पत्ति मानी है। तो तुम्हारा यह मानना योग्य नहीं है। और, किर जब परलोक है, परलोकमें जाने वाला कोई है, उसकी सिद्धि होती है तो परलोकी तो स्वतन्त्र रहा। परलोक है यह भली प्रकार सिद्ध है। परलोक न होता तो बच्चा उत्तर द्वारा देखने के बाद एकदम माँका दूध कीसे पीने लगता। उसे खूब समझता जाता, बड़ा। अग्न्याप कराया जाता तब वह बड़ा मुखिकलसे दूध पीनेकी बात जान पाता लेकिं। पूर्व लोकमें उसके आहारसंज्ञाका संस्कार था, तो यहाँ कट प्रवृत्ति हुई। अनेक पुरुषोंको बचपनमें पूर्व-भवके स्मरण और स्मरण जैसे कार्य भी उनके देखनेमें आये हैं। परलोक है, परलोक में रहने वाला चेतन है तो अचेतन शरीरसे चेतनकी उत्पत्ति नहीं है। विलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य भी हो सकता है और समान कारणसे समान कार्य भी हो सकता है। जहाँ जैसा उचित है, युक्तिसंगत है वहाँ वैसा मानना चाहिये।

बोधसे ज्ञानान्तरमें बोधरूपता होनेके हेतुके विकल्प—अब वैशेषिक विज्ञानवादीसे पूछ रहे हैं कि ज्ञान अन्य ज्ञानका कारण बनता है ऐसा जो इनका कथन है तो पूर्वज्ञानको ज्ञानान्तरका कारण बननेमें हेतु क्या है? किस कारणसे एक ज्ञान अगले नदीने ज्ञानमें ज्ञानरूपताका कारण बन जाता है? क्या इस कारणसे कि वह पूर्वकाल भावी ज्ञान है? पहिले समयमें होने वाला जो ज्ञान है वह ज्ञान उत्तर समयके होनेवाले ज्ञान विद्यर्थमें ज्ञानरूपता करदे याने अगले ज्ञानका उत्पत्तिका कारण बने इसका कारण क्या यह है कि चौंकि वह पूर्व समयमें है, अथवा यह कारण है कि समान जातीय है, अगला ज्ञान भी ज्ञान है, पहिला ज्ञान भी ज्ञान है। तो जाति समान होनेके कारण एक ज्ञानने अगले ज्ञानमें ज्ञानरूपता उत्पन्न कर दी। या एक संतानपना हेतु है अर्थात् ज्ञान ज्ञान लगातार बारम्बार प्रतिसमय नयेनये ज्ञान पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं तो उनमें एक सतान बनी हुई है। जैसे हारमें एक-एक दाने कर के १०० दाने हैं, पर हारके १०० दाने इस तरह एकके ऊपर एक अवस्थित है और योभा दे रहे हैं। वे मब एक सूतमें फसे हुए हैं। इसी तरह एक ज्ञान अगले ज्ञानरूपता उत्पन्न कर दे, इसका कारण क्या है? एक ज्ञानसे दूसरे ज्ञानमें बोधरूपता कैसे आई ये तीन विकल्प किए गए।

बोधसे ज्ञानांतरमें बोधरूपता होनेकी सिद्धिमें पूर्वकालभावित्व और समानजातीयत्व हेतुकी अनेकान्तिकता — उक्त विकल्पोंमें यदि पहिला विकल्प कहोगे कि भाई अगले ज्ञातसे पूर्वमें वह ज्ञान है ना तो पूर्वकाल में होनेके कारण अगले ज्ञानमें वह ज्ञानरूपता उत्पन्न कर देता है तो भाई इसमें तो समान ज्ञानोंके साथ व्यभिचार आ गया । जैसे मान लीजिए — देवदत्त व यज्ञदत्त ये दो आदमी बैठे हैं और उन दोनों पुरुषोंके शरीरमें अलग-अलग ज्ञानोंकी प्रस्तरा चल रही है । अब द बज कर १ मिनटपर देवदत्त नामक प्रश्नमें जो ज्ञान हो रहा है वह ज्ञान द बजकर २ मिनटमें यज्ञदत्तके ज्ञानमें ज्ञानरूपता क्यों नहीं पैदा करता, क्योंकि पूर्वज्ञानमें तो हो गया । देवदत्तके ज्ञानोंमें तो वंड़ा द बजकर पहिले मिनटमें उत्पन्न हुए ज्ञानें उसी देवदत्तके द बजकर दो मिनटमें होने वाले ज्ञानमें ज्ञानरूपता तो लादी और वह यज्ञ-दत्तमें द बजकर दो मिनटपर जो ज्ञान हुआ उसमें ज्ञानरूपता न ढाले, इसका क्या कारण है ? बोधरूपता न ढाले देणा तो पूर्वकालभावित्वका व्यभिचार हो जायगा, अर्थात् पूर्वकाल भावी होनेसे पूर्व ज्ञान उत्तर ज्ञानमें ज्ञानरूपता पैदा कर देता यहाँ हेतु सदौष हो गया । और, यदि दूसरा विकल्प कहोगे कि समान जातीयता है अर्थात् यह भी ज्ञान है वह भी ज्ञान है इसलिए ज्ञान अगले ज्ञानमें ज्ञानरूपताको ढाल देता है तो भी दूसरे पुरुषमें उत्पन्न होने वाले ज्ञानसे फिर भी व्यभिचार आ जाया । अर्थात् समान जातीय ही ज्ञान तो देवदत्तका है और समान जातीय ही ज्ञान यज्ञदत्तका है । तो देवदत्तका ज्ञान यज्ञदत्तके ज्ञानमें ज्ञानरूपता क्यों नहीं पैदा कर देता है ? और, सो यही पूर्वकाल भावीका भी शब्द विकल्प न रहा । तुमने केवल समान जातीयताके नातेस एक ज्ञान दूसरे ज्ञानमें ज्ञानरूपता उत्पन्न कर देता यह मान लिया तो दूसरेको संतानमें होने वाल सारे ज्ञानोंमें ज्ञानरूपता बना दे देवदत्तका नाम । तो अन्य संतानमें होने वाले ज्ञानके साथ यह समान जातीयत्व हेतु अनेकांतिक होता है ।

बोधसे बोधरूपताके सम्बन्धमें विचार — स्याद्वाद पिछान्तसे इस समस्या पर कुछ दृष्टि डालें तो पहिले नित्यान्त्यात्मक एक आवार मानना पड़ेगा । ज्ञान तो उत्पन्न होते रहते हैं । वे प्रतिसमयके एक-एक ज्ञान परिपूर्ण पदार्थ नहीं हैं, किन्तु एक जीवके प्रतिसमयमें जो ज्ञानस्वरूपका परिणामन चलता है वह परिणामन है प्रत्येक समयके ज्ञान ज्ञान, तो ऐसा माना जानेपर पहिला यथान यथानरूप ही तो है ना सो अगला यथान यथानरूप ही बने इसमें कोई आपत्ति नहीं आती । न यह दोष आता है कि देवदत्तका यथान यथादत्तके यथानमें यथानरूपता क्यों नहीं पैदा करता ? नहीं क्योंकि उगादान भिन्न है । कोई एक यथान अगले सारे यथानोंमें यथानरूपता क्यों नहीं पैदा करता ? यों नहीं पैदा करता कि कार्य उगादानसे होता है और उगादान माना गया है पूर्व पर्याय संयुक्त द्रव्य । तो कोई किसी भी पर्यायमें रहने वाला द्रव्य अगली पर्यायकी पर्यायकी उत्पत्तिका कारण बनेगा, न कि अगले समयकी पर्यायोंका उल्लंघन न करके अविष्यकी सारी पर्यायोंका कारण बनेगा । तो स्याद्वाद दृष्टिसे

तो यानमें यानरूपता भी बनती है और रागादिमान विग्यानसे रागादिरहित यान की उत्पत्ति भी बनती है।

बोधसे बोधरूपताकी सिद्धिमें एकसंतानत्व हेतुकी अन्य ज्ञानसे व्यभिचारिताका प्रदर्शन — उक्त दो विकल्पोंकी चर्चकि बाद वैशेषिक तीसरे विकल्पके सम्बन्धमें कह रहे हैं कि यानसे यानरूपता बनती है अन्य यानमें ऐसा सिद्ध करनेमें यदि एक संतानत्व हेतु दोगे, जैसे कि मूँकि वे यान, यान, यान सारे एक संतानमें उधड़ रहे हैं इस कारणसे यान अन्य यानमें यानरूपता पैदा कर देता है। जैसे कि बड़े चमकदार दानोंका हार हो तो पहिला दाना अपनी चमक अपने अगले दानेको सौंप देती है। एक संतानमें है ना वे, इसी प्रकार एक संतानमें रहनेके कारण एक यान दूसरे यानको यानरूप बना देता है, ऐसा यदि मानोगे तो उसका अन्तिम यानसे व्यभिचार आएगा, अर्थात् जो योगियोंका अन्तिम यान है वह अन्तिम यान तो अन्य यानको पैदा नहीं कर पाता क्योंकि योगियोंके मरणमें जो अन्तिम यानक्षण है वह उत्तर यानक्षणको नहीं उत्पन्न करता। विग्यानवादके मरणमें भोक्ता इसीको कहा गया है कि यह भ्रम मिटा देने कि मैं सदाकाल रहता हूँ। मैं शाश्वत कोई आत्मा हूँ यह जब तक भ्रम लेगा है तब तक जीवका संसार है। विग्यानवादके सिद्धांतमें जब यह भ्रम दूर हो जाय और यह मान लें कि मैं तो कुछ हूँ ही नहीं, है यह यानक्षण, सो यह स्वतन्त्र प्रवार्थ है। इसकी सत्ता दो समय तक भी नहीं है, यह एक समयमें होता है और उसी समयमें विलीन हो जाता है। ऐसा माननेपर होता क्या है कि एक आखिरी ऐसा यान होता है कि जो मिट गया तो किर उसके बाद नया यान नहीं होता। इसीका नाम निर्वाण याना है। जैसे दीपकका निर्वाण क्या ? दीपकमें जो लौ चल रही है उस लौके बाद लौ, यों चलता रहता है। घंटे भर जला दीपक घंटे भरमें जियने असंख्यात समय हैं प्रत्येक समयमें उस लौके बाद लौका स्वरूप बना, दूसरा, तीसरा चौथा लौ, यों असंख्यते लौ इसमें नने। कदाचित् किसी प्रकारसे किसी एक लौके बाद दूसरा लौ न आए तो इसके मायने हैं कि सारी लौ अब न आयेगी, अब दीपक खत्म हो गया। तो इसी प्रकार जिस यानके बाद दूसरा यान न आयगा उस अन्तिम यानमें देखिये सतान तो एक थी मगर बोधरूपता उत्पन्न न हो सकी तो उस अन्तिम यानसे अनेकांतिक दोष हीता है। अतः यह विकल्प भी ठीक नहीं कि एक संतान होनेके कारण यानसे यानरूपता बनती है।

क्षणिकवादियोंका ज्ञानसे ज्ञान होते रहनेका वक्तव्य विज्ञानवादी कह रहे हैं कि हम अन्तिम ज्ञान कोई मानते ही नहीं हैं अर्थात् प्रत्येक ज्ञान नये ज्ञानोंको उत्पन्न करता ही रहता है। अन्तिम ज्ञान तो वह कहलाये कि जिसके बाद एक ज्ञान उत्पन्न न हो। जब जीव मरण करता है तो मरण शरीरमें रहने वाला ज्ञान अन्य ज्ञानको उत्पन्न कर देनेका कारण होता है। मरण शरीरमें रहने वाला ज्ञान गम्भी

अवस्थामें होने वाले ज्ञानका कारण है और जगती हुई अवस्थाका ज्ञान सोई हुई अवस्थाके ज्ञानका कारण है। अन्तम् ज्ञान कुछ नहीं हुआ करता। इसका माव यह है कि सोई हुई अवस्थामें लोगोंको यह मालूम सा होता है कि इसके कुछ ज्ञान नहीं है। यथान बिना यह देखो मृदा सा बेहोश पड़ा है और लगता भी बेहोश सा है पर सोई हुई अवस्थामें भी यथान बराबार चल रहा है। किन्तु, वैशेषिक सुषुप्तावस्थामें यथान नहीं मानते सो जो विग्यानतंत्रादी हैं यथानसे यथानकी उत्तरति मानते हैं उनसे पूछा जा रहा है कि सोई हुई अवस्थामें यथात कहांसे आ गया? इस यथानको किसने पैदा किया? तो उनका उत्तर है कि पहिले जाग रहे थे तब तो यथान था, तो जागृत अवस्थामें होने वाला यथान सोई हुई अवस्थाके यथानका कारण होता है। इसी प्रकार मरण शरीरमें रहने वाला यथान नये शरीरके गर्भमें होनेवाले यथानका कारण नना है।

ज्ञानमें ज्ञानान्तरकी उत्पत्ति माननेपर भी सन्तानान्तरके ज्ञानसे व्यभिचारित्वके अनिवारणका वैशेषिकों द्वारा कथन—मरणग्यानसे व जाग्रत ग्यानसे गर्भग्यान व सुषुप्तग्यानकी उत्पत्ति माननेपर वैशेषिक कहते हैं कि ऐसा कहते पर भी तो एक संतानत है निर्वैष नहीं रह सकता क्योंकि मरण शरीरमें जो यथान होता है उसे मान लिया तुमने कि बीवमें होनेवाले शरीरके यथानका कारण अथवा गर्भ वाले शरीरके यथानका कारण तो इससे यह व्यभिचार दोष दूर नहीं हो सकता कि वह अन्य संतानमें भी यथानका जनक क्यों नहीं हो जाता? यह माना जानेपर भी मरण समयमें जो शरीरमें यथान था वह रास्तेमें विघ्न गतिमें जो कामीण शरीर चलता है उस शरीरमें ग्यानका कारण है अथवा यह मरण समयका शरीरग्यान गर्भ शरीरमें ग्यानका कारण बन जायगा। इतना कहने पर भी यह नियम तो न बना कि वह इस ही शरीरके यथानका कारण बने! उस समय अनेक जीव पैदा हो रहे हैं तो किसी भी शरीरका ग्यान किसी भी पैदा होने वाले जीव शरीरके ग्यानमें कारण क्यों नहीं हो बैठता? क्योंकि अब निश्चित हेतु तो कुछ नहीं रहा।

सान्ध्यज्ञानसे उत्तरज्ञानके होनेका प्रतिपादन—इसका स्पष्टीकरण स्याहादविविसे इन प्रकार है कि मरणसमयका ज्ञान आगले जन्मके समयके ज्ञानका कारण होता है लेकिन वह ज्ञान परिणामन है। उन ज्ञानोंका आधारभूत आत्मा है। कोई एक आत्मा मान लिया जाय और फिर उस आत्माका एक क्षणका ज्ञान उत्तर क्षणके ज्ञानका कारण माना जाय तो तो सही बैठता है, पर जहाँ आत्मा नामक कोई पदार्थ ही नहीं है, एक एक समयके होने वाले ज्ञानका ही नाम आत्मा है अर्थात् जैसे एक मिनटमें हजार समय हैं तो वहाँ हजारों ज्ञान हुए और एक एक एक ज्ञानका ही नाम एक एक पूरा आत्मा है अर्थात् हजारों आत्मा हुए। तो जब वह ज्ञान पदार्थ स्वतन्त्र पूरा सत्तावान है तो एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ कार्य कारण क्या? नियम क्या? तो पदार्थ न्यारे-न्यारे सत् हैं उन पदार्थोंका कारणपना क्या? जैसे एक

शरीरमें रहने वाला ज्ञान दूसरे शरीरथे रहनेवाले ज्ञानका अनुग्रह तो नहीं कर सकता। क्योंकि वे जुदा हैं दोनों। तो इसी तरह एक ही शरीरमें उत्तर छोटे रहने वाले ज्ञान चूंकि परिपूर्ण पदार्थ है, स्वतन्त्र सत्तावान है तो इनका एक दूसरेसे क्या सम्बन्ध? और फिर एक ज्ञानमें दूसरे ज्ञानमें बोधरूपता कैसे आ सकती है? तो एक सत्तावानमें वे ज्ञान चल रहे हैं इस कारण पूर्वज्ञान शर्तात् ज्ञानमें बोधरूपता ला देवे यह माना जाय तो यह माननेपर इस अन्तिम ज्ञानसे व्यभिचार आया और यदि माना जाय कि अन्तिम ज्ञान कोई है ही नहीं प्रत्येक ज्ञान नये ज्ञानमें बोधरूपता उपलब्ध करता है। तो एक शरीरका ग्रन्थान दूसरे शरीरके ग्रन्थानका कारण क्यों नहीं बन जाता?

अन्यके ज्ञानसे अन्यके ज्ञानके हूनेके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर—अब विज्ञानवादी कहते हैं कि हम एक शरीरके ज्ञानको दूसरे शरीरके ज्ञानका कारण मानते हैं। जैसे पढ़ाने वाले अध्यापकका ज्ञान शिष्यके ज्ञानका कारण है। कौन कहता है कि एक शरीरका ज्ञान दूसरे शरीरके ज्ञानका कारण नहीं बनता। शिक्षक पढ़ाता है, शिष्य ज्ञान हासिल करता है तो इस प्रकार शिक्षकका ज्ञान उस शिष्यके ज्ञानका कारण बना कि नहीं? तो एक शरीरका ज्ञान भी दूसरे शरीरके ज्ञानका करण बनता है, ऐसा क्षणिकवादियोंके कहनेपर वैशेषिक पूछते हैं कि उपाध्यायका ज्ञान शिष्यके ज्ञानका कारण बन गया, पर दुनियांमें जो इतने आदमी भरे हुए हैं उनके ज्ञानका कारण क्यों नहीं बनता? यदि कहो कि कर्मवासना इसकी नियामक है, जैसी जिसके साथ वासना लगी है, जो वासना भी ज्ञानरूप ही है, अथवा कहो कि अदृष्ट लगा है, किया लगी है, वह नियंत्रण करती है कि उपाध्यायका ज्ञान शिष्यके ज्ञानका कारण बनेगा, ढोर चराने वाले के ज्ञानका कारण न बनेगा, तो वैशेषिक उत्तर देते हैं कि वासना भी तो ज्ञानको छोड़कर अन्य कुछ नहीं क्योंकि विज्ञानवादमें सर्व कुछ तत्त्व ज्ञान ही माना गया है तो वासना भी ज्ञान है और आसनका है ज्ञानसे तादात्म्य सम्बन्ध फिर वह ज्ञान सामान्य रह गया। तब फिर ज्ञानसे ज्ञानरूपता बनती है यह बात सर्वभावाधारण बन चुकी, फिर किसीका ज्ञान किसी दूसरेके ज्ञानका कारण क्यों नहीं बन जाता?

क्षणिकवादीका और विशेषवादीका ज्ञानके सम्बन्धमें मन्तव्य—दोनों दार्शनिकोंके प्रश्नोत्तरका आवं यह है कि विज्ञानवादी तो यह मानते हैं कि एक ज्ञान आगले ज्ञानका कारण बनता है और विशेषवादी मानते हैं यह कि ज्ञानरूप है, आत्मा से जुदी ऊजी है, उसका आत्मामें सम्बन्ध होता है। और ज्ञान निकल गया आत्मासे उसका नाम है भोग। ज्ञानकी शुद्ध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। ज्ञान क्या शुद्ध होगा? ज्ञानसे ही तो सारे झगड़े लग गए। इन सम्भा, ईट, पत्थर आदिकमें ज्ञान नहीं है तो देखिये, ये कैसे आरामसे पड़े हैं, इन्हें कोई विकल्प ही नहीं है। इस ज्ञानसे ही तो सारा कष्ट हो जैठा। उसकी क्या शुद्धि करना? यह ज्ञान दूर हो जाय

आत्मासे और इन जड़ पदार्थोंकी भाँति केवल रह जाय आत्मा, बस शान्ति तो उसमें है, निर्बाण उसमें है। ऐसे ये दो सिद्धान्त सामने चल रहे हैं जो परस्पर एक दूसरेको अपने मन्त्रवत् रख रहे हैं। इस प्रसङ्गमें विज्ञानवादियोंका यह कथन चल रहा है कि सोई हुई अवस्थाका जो ज्ञान है। जगते समयका ज्ञान सोते समयके ज्ञानका कोरण है। उस ज्ञानके कारण सोई हुई अवस्थामें भी ज्ञान बना रहता है विशेषिक कहते हैं कि यह बात तो असम्भव है, ठीक नहीं है क्योंकि सोई हुई अवस्थामें अग्रगत ज्ञान मान लो तो जगे और सोयेमें कुछ फर्क ही न रहा। जगेमें भी ज्ञान था और सोये हुएमें भी ज्ञान मान रहे हो, तब तो जगे और क्षोयेमें फर्क न होना चाहिये। जोग फिर क्यों पहिचान जाते हैं कि यह सोया है यह जग रहा है? इसी कारण तो पहिचानते हैं कि उस सोये हुएमें ज्ञान नहीं है और उस जगे हुएमें ज्ञान है। तभी तो भट बता देने हैं कि यह आदमी सोया हुआ है और यह आदमी जग रहा है। अब तुम ज्ञान मान रहेहो दोनों में। जगे हुएमें भी ज्ञान है और सोये हुए में भी ज्ञान है। तब फिर उसका कोई फर्क न रहना चाहिये। क्योंकि जागने वाला पुरुष जिस तरह स्वसंवेहित ज्ञानका उपयोग कर रहा है उसी प्रकार सोया हुआ मनुष्य भी स्वसंवेहित ज्ञानका उपयोग कर रहा है, फिर उनमें फर्क क्या रह जायगा?

जागृवदस्थाके ज्ञान और सुषुप्तावस्थाके ज्ञानके सम्बन्धमें संक्षिप्त विवरण—इस प्रसंगपर स्पादादी थोड़ा सा स्पष्टीकरण कर रहे हैं कि सोई हुई अवस्थामें ज्ञान नहीं है यह तो कहा ही नहीं जा सकता। क्या उस समय जीव ज्ञानरहित हो गया? मोई हुई अवस्थामें ज्ञान अवश्य है, तब यह भी नहीं कह सकते कि जागी हुई अवस्थासे सोई हुई अवस्थामें कुछ भेद न रहना चाहिए, कोई विशेषता न रहना चाहिए, क्योंकि सोई और जागी हुई अवस्थामें कुछ भेद न रहा क्योंकि सोई हुई अवस्थामें विज्ञानका सद्ग्राव होनेपर भी जो अति तेज निद्रा आ रही है उसके कारण वह ज्ञान तिरोभूत हो गया है, ज्ञान दब गया है, ढक गया है। उस ज्ञानका अभिभव हो गया इससे प्रकट विशेषता जाहिर होती है जागी हुई अवस्थासे सुषुप्तावस्थामें। सोई हुई अवस्थामें तो ज्ञानका तिरोभाव है और जागी हुई अवस्थामें ज्ञानका आविभवि है। जैसे कोई पुरुष पागल हो गया तो पागल और गैरपागलमें लोग अन्तर जानते कि नहीं? नहीं तो, गैरपागलको ही पागल कह दें और पागलसे भी अपना सम्बन्ध बना लें। लोगोंकी समझमें है ना यह कि यह पागल है, और यह पागल नहीं है यह समझ कैसे बनी? यों ही तो बनी कि पागलके ज्ञानमें कुछ अभिभव है, तिरोभाव है, कुछ बिगड़ है, विशुद्ध प्रकट नहीं है। और जो पागल नहीं हैं उनका ज्ञान शुद्ध प्रकट है। तो अन्तर जैसे यहाँ समझा गया है ऐसे ही अन्तर जागे हुए और सोये हुए पुरुषमें भी समझना चाहिए। जागे हुए और पुरुषका ज्ञान आविभूत है और सोये हुए पुरुषका ज्ञान तिरोभूत है। अथवा जैसे कोई दवा सुंघानेसे मूर्छित हो गया तो ऐसे मूर्छित पुरुषमें और गैर मूर्छित पुरुषमें लोगोंको फर्क मालूम होता है कि नहीं। फर्क मालूम होता है

वह क्या कर्क दिखाई देता है कि यह मूँछित पुरुषका तो मदिरादि पीनेसे जो इसमें मद वेदना उत्पन्न हुई है उससे इसका ज्ञान अभिभूत हो गया है और जो मूँछित नहीं है उसका ज्ञान मद वेदनासे अभिभूत नहीं है।

सुषुप्तावस्थामें ज्ञानका अतीनिद्रासे अभिभव देखिए मूँछित होनेका अर्थ क्या है ? मदकी वेदनासे पीड़ित होनेका नाम मूँछित होना है । तो क्या मूँछित हुआ पुरुष मजेमें है ? लोगोंको ऐसा दिक्रता है कि यह बहुत आनन्दमें है । यह पहिले बहुत विह्वल था, इष्ट विशेषमें रोता था, इसको तेज मदिरा लिला दिया तो यह मूँछित पड़ गया, अब इसको कोई वेदना नहीं । अरे इष्ट विशेषमें जो उससे वेदना हुई थी उससे भी तब वेदना है इस सूँछितको जो कि मद वेदनासे पीड़ित हो रहा है । अन्यथा फिर यह कह लो कि पुरुषसे तो अच्छे निगोदिया जीव हैं । इन जानवरोंके अच्छे तो ये पेड़ बस्तिहैं, क्योंकि ये खड़े हैं, ये न रोते हैं न हिलते डुलते हैं, न चिल्जाते हैं । अरे इनको तो जानवरोंने भी अधिक वेदना है । जैसे मद अवस्थामें मद वेदनासे पीड़ित होता है और उसका ज्ञान तिरोभूत हो गया है और जो मूँछित नहीं है उसका ज्ञान सावधान है, स्पष्ट है, तब तो इनमें अन्तर नज़ारा रहा है ना । तो इस प्रकार जागृत अवस्थामें और सोई हुई अवस्थामें भी अन्तर है । वह अन्तर यह है कि अतीनिद्रासे अभिभूत ज्ञान है, सोये हुएका और अतीनिद्राके अभावसे जगने वाले का ज्ञान अभिभूत हुआ नहीं है । देखिये—यहाँ अतीनिद्रासे तिरोभाव बताया गया है, क्योंकि नीद तो इस समय हग आप भी ले रहे हैं । ले रहे हैं ऐसी कि हम चाहे जग रहे हैं हम बात सुन रहे हैं, पर बहुत हल्की नीद इस समय भी आ रही है जिससे कि कोई ज्ञानका तिरोभाव नहीं हो पा रहा है । तो छोटी नीदका काम तिरोभाव नहीं है जहाँ अतीनिद्रा आ रही है वहाँ ज्ञानका तिरोभाव है और जग और भी नीद आ जाय तो भी ओता महोदयका ज्ञान फिर भी पूरा दबा नहीं है, उनसे आगर सोये हुएमें बत्ता पूछ बैठ कि कहो लालाजीं सो रहे हो क्या ? तो कहेंगे नहीं सा ब, सुन रहा हूँ । तो छोटी-मोटी निद्रासे ज्ञान अभिभूत नहीं होता । निद्रा तो प्रायः हर समय आ रही । खाने वाले बच्चोंमें किसीमें तो यह बात स्पष्ट देखनेको मिल जाती है, कहो कौर भी नीचे गिर जाय । तो यहाँ अतीनिद्राकी बात कह रहे हैं ।

विज्ञानवादियों द्वारा मिद्दत्वसे सुषुप्तज्ञानका अभिभव कहे जाने पर मिद्दत्वके स्वक्षणका विशेषवादियों द्वारा प्रश्न वैशेषिकोंने बहाँ यहीं तो उगलम्ब दिया ना, कि ज्ञान यदि ज्ञानकी वारा बनाये रखता है तो सोये हुएमें और जगे हुए पुरुषमें कोई विशेषता न होना चाहिए । तो इसी बातगर विज्ञानवादी अब पुनः कह रहे हैं क्योंकि उन्हें थोड़ा इस समयमें म्याद्वादके कथनसे बल मिला, तो पुनः कहते हैं कि हाँ यहीं बात है । सोई हुई अवस्थामें अतीनिद्राके कारण ज्ञान अभिभूत

हो गया है। अथवा अब अति जड़ताके कारण सोई हुई अवस्थामें ज्ञानका तिरोभाव हो गया है इसलिए जगे पुरुषमें सोये पृष्ठपे विशेषता नजर आती है। वैशेषिक कहते हैं कि वह अति जड़ता अथवा अतिनिद्रा भी तो ज्ञानका घरमें माना हुआ, तुम्हारे यहाँ सो ज्ञानके सिवाय और कुछ तत्त्व माना ही नहीं गया। एक विज्ञानाद्वैत है, तो निद्रा भी ग्यानस्वरूप है, वह बेहोशी भी ग्यानस्वरूप है वह जड़ता भी ग्यानस्वरूप है। तो उसका तो ग्यानसे तादात्म्य हो गया और जिसका ग्यानसे तादात्म्य है वह ग्यान का तिरोभाव कर सके यह बात नहीं बन सकती। यदि कहो कि वह अतिनिद्रा अथवा अतिजड़ता ज्ञानसे भिन्न चीज़ है तब किर यह बतलाओ कि वह मिद्रता, मिद्रता नाम है इन दोनों अवस्थाओंको चाहे अति जड़ता आ जाय और चाहे अतिनिद्रा आ जाय, दोनों पुरुषोंको मिद्र कहा करते हैं। तो भी मिद्रपना यदि विज्ञानसे निराला है तो उसका स्वरूप बतलाओ। पदार्थ तो ५ प्रकारके माने गए—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार। क्षणिकवादियोंने पदार्थ इस तरहके ५ माने हैं। अब देखिए ! जिनको जो स्पष्ट समझमें आया उसने उस ही प्रकार पदार्थोंकी संख्याका निर्धारण किया। वैशेषिकोंकी इष्टि, उनका मूड कुछ इस तरहका एक ही पदार्थमें भेद कर करके बोध करनेका था। तो उन्होंने इस तरह पदार्थ ७ माने हैं—द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। यहाँ माने गए हैं—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार। तो तुम्हारे इन ५ पदार्थोंके स्वरूपमेंसे उस मिद्रपनेका स्वरूप क्या है सो तो बताओ ?

**मिद्दत्वका स्वरूप** — इस प्रश्नको सुनकर यद्यपि स्याद्वादी लोग ज्ञानको स्थतन्त्र सत् पदार्थ नहीं मानते और उनके प्रति यह प्रश्न भी नहीं हो सकता, लेकिन घोड़ीसीं स्पष्टता कर रहे हैं उस वैशेषिकके प्रश्नके विवरणमें कि हाँ उस मिद्दत्वका स्वरूप है। मिद्दावि सामग्रीके कारण निद्वा होनेके कारण मदिरपान होनेके कारण जो एक ज्ञान अनध्यवसाय हो गया है और आध्यात्मिक अर्थके विचारमें अब नहीं लग रहा है। चलते हुए पुरुषके पैरमें जैसे तुण छू जाय तो तृणस्पर्शसे ज्ञान जैसे एक अनध्यवसायरूप रहता है, उसके समान सोई दुई अवस्थामें ज्ञान रहता है, यह है मिद्दत्व का स्वरूप। देखिये ! यहाँ उत्तर तो देना चाहिए था बौद्धोंको, पर गुणोच्छेदका नाम मोक्ष है, यह बात विशेषवादिकीं नहीं समझते थे, इस कारण ही जिनसे विशेषवादियोंको विवाद है उन उनके पक्षको घोड़ा स्याद्वाद भी स्पष्ट कर रहा है और देखिये कितना अच्छा स्पष्टीकरण है, इससे अच्छा स्पष्टीकरण और क्या हो सकता है मिद्दत्वके बारेमें ? सोई दुई अवस्थामें कुछ अभिभूत विकृत ज्ञान है तो उस ज्ञानका स्वरूप क्या है ? सो बतलाओ ! अब जरा कुछ युक्तियोंको खोजें तो यह प्रश्न उठ सकता है कि बतलायों सोई दुई अवस्था वाले पुरुषका ज्ञान कौनसा ज्ञान है ? सम्यग ज्ञान है कि संशयज्ञान है या विपर्ययज्ञान है कि अनध्यवसाय ज्ञान है ? तो यहाँ स्पष्ट किया गया कि अनध्यवसाय ज्ञान है। इतना साफ बताया कि सोई हुए पुरुषका जो

ज्ञान है वह अनध्यवसायका भेद है। चलनी हुई हालतमें जो तृणश्चर्षे आदिका सामान्य ज्ञान होता है वह अनध्यवसाय जरा कुछ अच्छाया हो गया और सोई हुई अवस्थामें वह भीतरी ज्ञान चल रहा है जिसको उस कालमें वह अनुभव नहीं करता, पर जागेपर अनुभव करता है कि हाँ कुछ था। तो वह अनध्यवसायका एक प्रकार है। कैसे नहीं है उस मिद्दनासे अविभूत ज्ञान ता स्वरूप ?

विशेषवादियों द्वारा अभिभवके स्वरूपपर दो विकल्प और प्रथम विकल्पका निराकरण अब वैशेषिक उस अभिभवके स्वरूपपर प्रश्न कर रहे हैं कि सोई अवस्थामें ज्ञानका तिरोभाव हो गया, ढक गया, तो इस अभिभवका अर्थ क्या है ? क्या इस अभिभवका अर्थ विनाश है कि ज्ञानका विनाश हो गया ? यदि ज्ञनका विनाश हो गया अभिभवका यह अर्थ माना जायगा तो ज्ञानकी सत्ता ही न रही, किर भगड़ा ही किस बातका रहा कि पूर्वज्ञान उत्तर ज्ञानका कारण है ऐसा सिद्ध करनेमें मेहनत ही क्यों की जा रही है ? वहाँ उत्तर ज्ञान रहा ही नहीं अभिभव हो गया, अर्थात् विनाश हो गया। अर्थवा मानलो थोड़ी देरकी विनाश हो गया तो विनाश किसी कारणसे ही तो हुया। अभिभवके कारण विनाश हो गया तो किर विनाश फ-हैंतुक न रहा, सकारण हो गया। विज्ञानवादमें पदार्थकी उत्पत्ति भी किसी कारण से नहीं होती है और पदार्थका विनाश भी किसी कारणसे नहीं होता। क्षणिकवादमें पदार्थ स्वयं ही अपने स्वरूपका लाभ लेता है और स्वरूप लाभके समय ही वे पदार्थ उसी पदार्थके कारण नष्ट हो जाते हैं। एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कारण बने यह बात क्षणिक सिद्धान्तमें सम्भव नहीं है। यह तो पदार्थका स्वरूप बनाया है कि पदार्थ हुआ, उसी समय आया, उसी समय गया दूसरे समय भी तो नहीं ठिरता, कोई पदार्थ ऐसा क्षणिक नहीं है। तो ऐसे सिद्धान्तमें न तो सोई हुई अवस्थाके ज्ञानकी सत्ता बताई जा सकती है और न सोई हुई अवस्था बाले पूरुषके ज्ञानका विनाश भी बताया जा सकता है इसलिए अभिभवका अर्थ विनाश तो कह नहीं सकते।

विशेषवादियों द्वारा अभिभवस्वरूपके द्वितीय विकल्पका निराकरण— यदि कहो कि अभिभवका अर्थ है तिरोभाव, तो कहते हैं कि यह बात भी युक्त नहीं, क्योंकि ज्ञानकी सत्ताका ही नाम सम्बेदन है ऐसा जब माना गया है तो विज्ञानका तिरोभाव नहीं हो सकता है। ज्ञान है और दबा है, यह कहना युक्त नहीं है, क्योंकि ज्ञान तो सम्बेदनात्मक हुआ करता है। उसके दबनेका क्या अर्थ है ? कोई पत्थर लकड़ी जैसी जींज मही है ज्ञान, जैसे कि कहीं कोई वस्तु रख निया लो दब गया। अरे ज्ञानका नाम ही सम्बेदन है। सम्बेदन क्या किसीसे दबाया जा सकता है ? किसी भी प्रकार सोई हुई अवस्थामें तुम ज्ञानका सद्ग्राव विद्ध नहीं कर सकते। तब किर अन्तिम ज्ञान बन गया ता कुछ ? तो एक संतानपता होनेमें यदि बोधसे बोधरूपता मानोगे तो अन्तिम ज्ञानसे यों व्यभिचार दोष होता है इस कारण यह कहना शुक्त

नहीं है कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता उत्पन्न होती चली जाती है।

संसार और मोक्षका वस्तुगत स्वरूप—इस प्रकपणमें मोक्षका स्वरूप बताया जा रहा है। मोक्षका स्वरूप ज्ञानना कल्याण चाहने वाले भाईयोंका मुख्य कर्तव्य है। मुख है मोक्षमें और दुःख है संसारमें। संहार नाम है अशुद्ध प्रकारके आत्माके भावोंका। और मोक्ष नाम है आत्माके ही शुद्ध भावोंका। यह जो दुनिया है यह जो स्थान दिल रहा है यह जो कुछ नजर आ रहा है इसका नाम संवार नहीं है। संवार नाम है आत्माके रागद्वेष मोह भावोंका। इसी जगह अरहंत भगवान् भी रहते हैं, उनके तो अब संसार नहीं रहा है। यद्यपि संसारकी शेष अवस्था है, शरीर-सहित हैं वगर उनको जीवन्मुक्त कहा गया है। तो इस जगह रहनेसे जीवको दुःख नहीं है। जगह बनी रहे, किन्तु जीवोंमें जो रागद्वेषमोहका परिणाम चलता है, अज्ञानभाव बर्ताता है उससे क्लेश है और उस ही भावका नाम संसार है। इसी प्रकार मुक्त हो जाते हैं तो वहाँ होता क्या है कि इस तरहके विभाव नहीं रहते। ज्ञानकी परिपूर्णता रहती है। आत्मामें जो स्वभाव है स्वरूप है उसका शुद्ध विकास हो जाय, अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्द प्रकट हो इसका नाम मोक्ष है।

मोक्षके स्वरूपमें विशेषवाद और क्षणिकवादका मन्तव्य—मोक्षका स्वरूप तो यह है कि जहाँ ज्ञान और आनन्द गुणका परम विकास हो गया है, किन्तु इष प्रसङ्गमें दो दार्शनिक आग्नी बात रख रहे हैं। वैशेषिकने तो यह अपना प्रस्ताव रखा कि आत्मामें जो ज्ञान गुण आदिक गुण हैं, इच्छा द्वेष आदिक अवगुण हैं उन समस्त गुणोंका वियोग हो जाना, विनाश हो जाना इसका नाम मोक्ष है और क्षणिकवादियोंने आग्नी यह प्रस्ताव रखा कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होना अर्थात् ऐसा ज्ञान होना कि जिस ज्ञान पदार्थके बाद फिर सिलसिला न रहे, जन्म मरण न रहे, एक ऐसा ज्ञान पदार्थ प्रकट होना इसका नाम मोक्ष है। इन दो पक्षोंमेंसे आपको कौनसा पक्ष अच्छा लग रहा है? क्या आत्मामेंसे ज्ञानानन्द आदिक गुण खत्म हो जायें इसका नाम मोक्ष है यह भला लग रहा है अथवा विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होना इसका नाम मोक्ष है, यह भला लग रहा होगा। देखिये! विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है, यह कुछ अच्छा जच रहा होगा। लेकिन क्षणिकवादमें विशुद्ध ज्ञान को आत्माका गुण नहीं माना है क्षणिकवादियोंने ज्ञानको एक अनग पदार्थ माना है और ज्ञान ही ज्ञान है दुनियामें। पदार्थ ज्ञानके सिवाय अन्य कुछ नहीं है। यह ज्ञानाद्वैतवादी क्षणिक सिद्धान्तका पक्ष है। आत्मा नहीं माना गया इस सिद्धान्तमें किन्तु हर समय जो ज्ञान उत्पन्न होते हैं वे एक एक समयके ज्ञान ही पूरे-पूरे पदार्थ हैं इस तरहसे उम ज्ञान पदार्थको मानते हैं और उन ज्ञान पदार्थोंमें एक संतान मानता है। जैसे कि एक तेलका दीपक जल रहा है तो जितनी जितनी तेलकी बूँदें एक एक पहुँच पाती हैं, उतने ही दीपक हैं अर्थात् एक

दीपके बाद दूसरा दीपक जला, उसके बाद फिर श्रोर दीपक जला तो जैसे ३० मि० तक तेलका दीपक जला तो उसमें कितने दीपक जुड़ गये ? हजार दीपक जुड़ गये होगे । मान लो छोटी-छोटी हजार दूंदें जन गयी तो उन हजारों दीपकोंके जलते बीच हम आप लोगोंको यह पता तो नहीं पड़ता कि यह दीपक जल चुका, अब यह दूसरा दीपक जल रहा, अब यह तीसरा दीपक जल रहा, अब यह चौथा दीपक जल रहा । यह मान्यम होता है कि आधा घण्टे लगातार कहीं दीपक जल रहा है । इसी तरह वे क्षणिकविस्तारवादी मानते हैं कि आत्मा कही अथवा ज्ञान कही एक ही बात है । समयमें नये-नये ज्ञान पैदा होते हैं—नये-नये आत्मा उत्पन्न होते हैं) एक समय में नये-नये ज्ञान पैदा होते हैं, नये नये आत्मा उत्पन्न होते हैं । एक समय रहता है, अगले समय नहीं रहता है, लेकिन वे आत्मा एक संतानमें हो रहे हैं इससे ऐसा लग रहा है इस जीवको कि मैं वही आत्मा हूँ जो १० वर्ष पड़िने था, कल था, अमुक काम किया था, सारे स्मरण इसको रहते हैं, हैं वहाँ जुदे-जुदे आत्मा । उन आत्माओंमेंसे, उन ज्ञानक्षणोंमेंसे एक ज्ञानक्षण शुद्ध हो गया अर्थात् उसकी संतान अब आगे न चले इसका नाम मोक्ष है ।

प्रसङ्गप्राप्त अभिभव शब्दके अर्थविकल्पोंका वैशेषिक द्वारा निरसन की चर्चा—उक्त दोनों मन्तव्योंके परस्पर वाद-विवादके बीच एक भोटासा प्रसङ्ग यह आया था कि ज्ञानसे ज्ञानरूपता बनती है । पहिले समयका जो ज्ञान हुआ उसमें जो बोध पड़ा है, बुद्धि पड़ी है, जो भाव पड़ा है, जो अनुभव पड़े हैं, वह ज्ञान अपने सारे अनुभव दूसरे ज्ञानको सौंप देता है । इस बोधरूपताके प्रदानकी इन क्षणिक-वादियोंको यों जरूरत पड़ी कि निरंश ज्ञानवादके प्रति यह प्रबन्ध होना स्वाभाविक है कि यदि वे ज्ञान ज्ञान सारे अलग-अलग पदार्थ हैं तो क्या वजह है कि यह ज्ञान पहिले जाने हुए पदार्थको भी जान जाता, जिसके बादका ज्ञान अलग पदार्थ है तो हम आपको जानी हुई बातको तो नहीं जान सकते, क्योंकि जुदे-जुदे हैं । हमारा आत्मा निराला है, आपका आत्मा निराला है तो आपकी जानी हुई बातको यह मेरा ज्ञान नहीं जान सकता है । तो इसी प्रकार एक ही शरीरमें जब न्यारे-न्यारे आत्मा पैदा हो रहे हैं तो एक आत्मा बहुतोंकी बात कैसे जान जाता है कि उसने अमुक काम किया था । जब न्यारे-न्यारे आत्मा हैं तो वहाँ यह मानना पड़ता है कि जो ज्ञान मिटाता है वह भिटते समय अपना सारा अनुभव, सारा चाहुँ एक नये ज्ञानके द्वारा जानी हुई सभी बातोंका स्मरण रहता है । तो यह सिद्धान्त जब रखा कि ज्ञानसे अगले ज्ञानमें अनुभव पहुँचा करता है तो वैशेषिकोंने यह पूछा कि जब कोई मनुष्य सो जाता है तो सोई हुई हालतमें तो ज्ञान नहीं रहता है तो यह कहना तो युक्त नहीं रहा कि कोई ज्ञान अगले ज्ञानमें बोधरूपता उत्पन्न करता है, उसे तो बोध नहीं रहता सोई हुई अवल्यामें, तो यह कैसे ठीक बैठेगा कि बोधसे बोधरूपता चल रही है । इस के उत्तरमें ज्ञानवादियोंने यह कहा कि सोई हुई हालतमें अतिनिद्रासे उस ज्ञानका अवि-

भव हो गया है, तिरोभाव हो गया है, दब गया है, तेज नीद हो जानेके कारण या अतिजड़ता आ जानेके कारण सोहु ईई अवस्थामें ज्ञान तो है पर वह ज्ञान दब गया है इसलिए वहाँ अनुभव नहीं चलता, पता नहीं रहता है, ऐसा उत्तर देनेरर विशेष-वादियोंने प्रश्न किया था कि इस अविभवका अर्थ क्या है ? अतिनिद्रासे या अतिजड़ता से जो ज्ञानका अविभव हो गया है, सोई हुई अवस्थामें जो ज्ञानका अनुभ्रोध हो गया है, जो ज्ञान दब गया है उस दबनेका अर्थ क्या है ? क्या ज्ञानका नाश होगया अथवा ज्ञानका तिरोभाव हो गया ? दोनों ही विकल्पोमें कुछ आवृत्ति बताई गई थी ।

**अविभवका अर्थप्रतिबन्ध** - अब इस सम्बन्धमें स्यादादी लोग कहते हैं कि सुषुप्तावस्थाके समय निद्राके कारण ज्ञानका अविभव हो गया है यह बात स्पष्ट है । यहाँ अविभवका अर्थ समझिये ! जैसे अग्निका काम क्या है ? जलाना ! पर अग्निके पास यदि कोई प्रतिबन्धक मणि रख दी जाय या कोई मंत्रवादी लोग मत्र पढ़ें तो उस समय अग्निजलानेका काम नहीं कर सकती । खेन दिखाने वाले लोगोंको आपने देखा होगा, खास करके दशहरेके दिनोंमें ऐसा खेल दिखाने वाले लोग यत्र-तत्र दिखाई देते हैं । तो वे करते हैं कि अग्नेहाथमें कोई विशिष्ट पत्रोंका रस लगा लेते हैं जिससे वे खूब अग्निमें तपाईं गई लोहेकी जंजीर अथवा लोहेकी सांकलोंको पकड़कर हाथसे खींचते हैं । उस अग्निसे वह सांकल इतनी जल जाती है कि बिनकुल लाल रङ्गकी हो जाती है और उसे हाथसे पकड़कर वे खेन दिखाने वाले खींचते हैं तो लोग उसे देख कर बड़ा प्राशंखर्य करते हैं देखो इतनी तेज जलती हुई लोहेकी सांकल ये पकड़े हुए हैं पर जलने नहीं है । तो उस खेल दिखाने वालेने किया क्या कि उस आगका प्रतिबन्ध करने वाले कुछ पत्तोंका रस हाथमें लगा लिया, इसप्रय अग्निका अब प्रतिबन्ध हो गया । कुछ वालें तो यहाँ भी आप देव सकते – दो एक औषधियाँ होती हैं एक तो नौसादर और दूसरा जूना, या कोई और ऐसी ही चीज़ इनको मिलाकर आगर किसी दोनाके नीचे चिपका दिया जाय और दोनामें दाल पकनेके लिए जलती हुई आगपर रख दिया जाय तो दोना नहीं जलेगा पर दाल पकने लगेगी । तो वह दोना क्यों नहीं जलता ? क्योंकि उसमें औषधिके द्वारा आगका प्रतिबन्ध कर दिया गया है । जैसे अग्निके पास कोई मणि रख दी जाय या कोई मंत्रवादी मत्र पढ़ता रहे तो किर अग्निमें जला देनेकी सामर्थ्य वहाँ नहीं रहती है । तो हम तुमसे खूब सकते हैं कि बतलावी वहाँ उस मणिमंत्र आदिक के द्वारा जो अग्निका प्रतिबन्ध आ है उसका अर्थ क्या है ? क्या अग्निका नाश हो गया है यह अर्थ है ? तो अग्नितो प्रत्यक्ष दिख रही है, अग्निका नाश तो नहीं हुआ है । यदि कहो कि अग्निका तिरोभाव हो गया है तो भाई जो स्व और परका प्रकाश करनेका स्वभाव रखती है, जो जला देनेका काम रखती है ऐसी अग्निका तिरोभाव तो असम्भव है और फिर देख लीजिये एक दोनाके नीचे जो दबाईयाँ लगा दी गयी हैं तो उन दबाईयोंके कारण आगमें तो वह दोना मही जलता, पर उस दोनामें रखी हुई दाल पकने लगती है । तो वहाँ हुआ

क्या कि दोनाके प्रति आगका प्रतिबन्ध हो गया है न कि अग्रिन दालको एका दे इसका प्रतिबन्ध हुआ ! तब न तो उस समय अग्निका नाश कह सकते और न अग्निका तिरोभाव कह सकते । यही बात उस सोई हुई अवस्थाके ज्ञानकी भी है । उस समय अतिनिद्राके द्वारा जो सोए हुए ज्ञानका अभिभव हो गया है विससे वहाँ अनुभव नहीं चलता, तो वहाँ न तो ज्ञानका नाश हुआ है, न ज्ञानका तिरोभाव हुआ है किन्तु ज्ञान का अविभव ही हुआ है । प्रतिबन्ध जरूर हो गया है । दूसरा भी दृष्टान्त देखो ! एक दीपक जल रहा है, उस दीपकके ऊपर यदि कोई खुला कनस्तर आंधा रख दिया है या कोई मटका वगैरह आंधाकर रख दिया है तो बतलावो उस जलते हुए दीपकका प्रविभव हो गया कि नहीं ? अब उस प्रतिबन्धका क्या यह अर्थ है कि दीपकका नाश हुआ ? नाश तो नहीं हुआ । क्या यह अर्थ है कि दीपकका तिरोभाव हो गया ? निरोभाव स्वपर प्रकाश वाले दीपकका क्या सम्भव है ? तो यदि यह कहोगे कि समझनेमें, जो तो में तो नहीं आ रहा कि मणिमंत्रके समय उस अग्निका प्रतिबन्ध किस प्रकार होता है, मगर विश्वासमें है स्वरूप सामर्थ्यका प्रतिबन्ध है जैसे कि स्वपरप्रकाशक स्वरूप प्रतिरोहित हो जाता है तो चैतन्यता अद्विरंगित रहता है । बस, यही बात तो उस सोये हुएके ज्ञानमें है । इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जगती हुई हालतमें भी ज्ञान था और सोई हुई हालतमें भी ज्ञान है । जगते हुएकी हालतमें अतिनिद्रा न होनेके कारण बोध रूपता है, वहाँ अनुभव है । समझ चल रही है और सोये हुए पुरुषके ज्ञानमें अतिनिद्रा से अभिभव होनेके कारण वहाँ समझ नहीं चल रही है ।

**रागादि विनाशके कारणके सम्बन्धमें क्षणिकवादीका मन्त्रव्य—इस प्रकरणमें मुख्य बात तो यह चल रही है ना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होनेका नाम भोक्ता है विशुद्ध ज्ञानके मायने क्या है । रागादिमान ज्ञान न रहकह रागादिरहित के ज्ञान होना । अथवा रागादिरहित ज्ञान क्या ? रागादि न रहन । यहाँ यह पूछा जाने पर कि ऐसा कौनसा उपाय है जिस उपायसे राम नहीं रहता ? तो क्षणिकवादीने कहा कि विशिष्ट भावनाका अभ्यास करनेसे रागादिका विनाश होता है । कोई एक विशिष्ट उत्कृष्ट भावना है ऐसी जिसके बार बार करनेसे रागादिका विनाश होता है । इसके अनेक अर्थ हैं बारह भावनायें भी ऐसी हैं अनित्य, अशरण, संसार आदिक समस्त बारह भावनायें ऐसी ही हैं कि जिनका बार बार अभ्यास करते रहनेसे रागादिक कम हो जाते हैं अथवा रागादिका कुछ नाश भी हो जाता है । इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि ऐसी भावना बनाये कोई कि मैं तो केवल ज्ञानरूप हूँ । ज्ञानके अतिरिक्त भेरे आत्माका और कुछ स्वरूप ही नहीं है, ऐसा अपने आपके बारेमें ज्ञानमात्र हूँ । ज्ञानमात्र हूँ । ऐसी निरन्तर भावना लगाये कोई तो उस अभ्याससे भी रागका विनाश होता है । लेकिन ये क्षणिकवादी लोग क्या मानते हैं ? इन भावनाओंकी बात वे नहीं करते हैं । किन्तु यह भावना बताते हैं कि मैं कुछ नहीं हूँ । यह तो केवल एक ज्ञानक्षण है । जिस कालमें जो ज्ञान होता है वही पूरा पदार्थ है, लगतार मैं नहीं रहता**

मैं कल था । आज हूँ । कल रहूँगा । ऐसा मैं हूँ ही नहीं मैं तो क्षणवर्ती हूँ । एक समय को उत्पन्न हो जाता हूँ फिर नष्ट हो जाता हूँ । मैं नित्य नहीं हूँ । इस प्रकारकी भावना कोई बनाये तो राग नष्ट होता है ऐसा ये लोग कहते हैं । और ऐसा माननेमें उन्होंने हित क्या समझा? हितकी बात क्या हूँदी? यह हित हूँदा कि जब हम यह गमभते हैं अपने बारेमें कि मैं पहिले भी था अब भी हूँ; आगे भी रहूँगा तो अनेक विकल्प उत्पन्न होते हैं और अनेक उलझने आ जाती है । मैंने किया यह काम' में कहूँगा यह काम आदिक । इससे यह मानना श्रेयस्कर है कि मैं तो क्षणिक हूँ । सदा नहीं रहता हूँ मेरा पहिलेसे कोई लगाव नहीं है, आगे भी कुछ लगाव न रहेगा । इस प्रकार क्षणमात्र अपने को माननेमें हित समझा है, यदि ऐसा क्षणिक अपनेको मानें, आत्मा न समझें । सदा रहने वाला न समझें, ऐसी भावना बने तो उससे रागादिकका विनाश होता है ।

क्षणिकवादमें, विशिष्टभावनाभ्यासकी रागादिविनाशमें कारणरूपता की असिद्धि—रागादिविनाशके उक्त उपायपर विशेषनादी कह रहे हैं कि विशिष्ट भावनाके अभ्याससे रागादिका विनाश कहना अयुक्त है । क्योंकि विनाश तो आपने निहेंतुक माना है तब अभ्यास कारणे बन ही नहीं सकता । विनाश निहेंतुक है, विना कारणके होता है, ऐसा क्षणिक वादियोंने कहा है । पदार्थ जब एक ही समय रहता है, अगले दूसरे समयमें रहता ही नहीं है, तो पदार्थ इस ही स्वभावके कारण हुआ और आगे उसका विनाश कोई कर ही नहीं सकता । तो दूसरा कौन विनाश करे । जिस समय कोई आत्मा उत्पन्न हुआ है उस समय पहला आत्मा तो रहा नहीं । उसका तो अभाव हो गया तो जिसका अभाव हो गया, जो है नहीं वह तो इसका नाश क्या करेगा? इससे आत्मा उत्पन्न होता है और अपने आप उसी समय नष्ट होनेमें हेतु कुछ नहीं रहा । कारण कुछ नहीं रहा । यह माना है क्षणिक वादियोंने, लेकिन यहाँ तो कारण आ गया रागका विनाश विशिष्ट भावनाके अभ्याससे हुआ । तो इसका सिद्धान्त से विरोध है । दूसरी बात यह है कि क्षणिकवादमें अभ्यास बन ही नहीं सकता, क्योंकि अभ्यास वहाँ होता है जहाँ ध्याता (ध्यान करने वाला) प्रवर्थित है । पर जहाँ ध्यान करने वाला कुछ है ही नहीं, तो क्षणिक होनेपर अभ्यास क्या बनायें? क्योंकि कि आत्मा क्षण-क्षणमें नया-नया बनता है? जब नया-नया आत्मा बने तो अभ्यास फिर किसका किया जाय? एक आदमी हो, जिसपर बहुत सी बातें गुजरती हैं, बहुतसे घटके लगते हैं, घोड़े आते हैं, ज्ञान जगता है, समझ बनती है, ऐसा ही पुरुष तो अन्तः प्रकाश पानेपर ध्यान कर सकेगा । जो क्षण-क्षणमें उत्पन्न हुआ और नाश हुआ वह अभ्यास किसका करेगा । यह भी कहना युक्त नहीं है कि संतानकी अपेक्षासे उसमें एक अतिशय ऐसा बन गया कि अभ्यास कर रहे हैं वे सब क्षण-क्षणमें उत्पन्न होने वाले आत्मा । अतिशय न बननेका कारण यह अन्वयके अभावमें संतान भी कोई चीज नहीं बनती । अतः रागादिक सहित ज्ञानसे साधारण ज्ञानसे रागाकिरहित ज्ञानकी याने असाधारण ज्ञानकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि अविशिष्ट (साधारण) ज्ञानसे उत्तरोत्तर

शास्त्रिशय ज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकते ? इस कारण भोगियोंका ऐसा ज्ञान बनना कि जिसमें समस्त कल्पनायें दूर हो जायें ऐसे विज्ञानकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष है, यह क्षणिक वादमें नहीं बनता ।

मोक्षोपायकी जिज्ञासा और विशेषण देखिये जितने भी दार्शनिक हुए हैं सबने मार्ग निकाला है कि संसारके दुःखोंसे हटनेका उपाय क्या है । सबने अपनेको दुःखी अनुभव किया । जो क्षणिकवादी लोग हैं वे भी अपनेको दुःखी अनुभव कर रहे हैं तब तो यह उन्होंने विचार हूँड़ा कि आत्मा क्षणमें नया-नया होता है । पहिलेसे किसी आत्माका सम्बन्ध ही नहीं है । तो ऐसा ही मानलो तो विकल्प दूर हो जायेगे । जब सारी कल्पनायें सपाथ्व हो जायेगी और एक क्षणमात्रका जिसे ज्ञान है, उस रूप ही अनुभव बनेगा तो राग नष्ट होगा, कल्पनायें दूर होंगी भीह मिटेगा । तब शान्ति मिलेगी तो लो इन विशेषवादियोंने वह उपाय हूँड़ा है कि आत्मामें जो ज्ञान लगा हुआ है इससे ही तो दुःख है । जब खबर आती है कि अमुक मिलमें इतने लाख रूपयोंका टोटा बढ़ गया है, यह बात ज्ञानमें आधी तभी तो दुःख हुआ । तो सारे दुःखोंकी जड़ यह ज्ञान है । रससे ज्ञान ही न रहे आत्मामें उसका नाम मोक्ष है । यह उन्होंने उत्तम हूँड़ा । कोई दार्शनिक पूछता है कि आत्माका स्वरूप तो एक सहज ज्ञान है, कैवल ज्ञान स्वभाव, प्रतिभासमात्र, ज्ञानमात्र, लेकिन अनादि कालसे उत्तमिका सम्बन्ध है, शरीर का बन्धन है कमोंका सम्बन्ध है । जिस कारणसे यह ज्ञान अपनी विशुद्ध हालतमें प्रकट नहीं होता और इसकी कल्पनाका रूप बन गया है ज्ञान तो करते हैं वे संगारी जीव गमर विकल्प नसे ज्ञान करते हैं, कल्पनायें उठाकर ज्ञान करते हैं, यह अमुक है, यह मेरा अमुक है, ये मेरे घरके लोग हैं, ये दूसरे लोग हैं । यह अमुक इष्ट बीज है, ऐसा विकल्प कर करके यह ज्ञान बना करता है । जब आत्माके सहज ज्ञानस्वरूपका परिचय हो जायता । यह मैं आत्मा एक विशुद्ध ज्ञानमात्र हूँ, इसमें जो कल्पनायें उठा करती हैं यह मेरे स्वरूपका काम नहीं है । यहाँ राग भावका सर्सर्ग हो गया है जिससे ज्ञानका कल्पनारूप बन गया है । यदि राग स्नेहभाव इनका समर्क न रहे तो इस तरहकी कल्पनायें नहीं बन सकतीं । इस रागको दूर किया जाय तो यह कल्पनाओंका विकृत रूप भी मिटे । और फिर ज्ञानका वह विशुद्ध स्वरूप ज्ञानमात्र स्वरूप प्रकट हो तब शान्ति मिलेगी । यह उत्तम बहुत कम दार्शनिकोंने जान पाया है ।

सान्वय विशुद्धज्ञानोत्पत्तिकी मोक्षस्वरूपताका प्रतिपादन - यहाँ कुछ समय तक विशेषवादी और क्षणिकवादीका परस्पर विरोध था, अब उस सम्बन्धमें स्याद्वादी लोग कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे और उस बीचमें कुछ शङ्कायें आयेंगी, उन्हें चाहे विशेषवादीकी तरफसे समझो, चाहे क्षणिकवादीकी तरफसे समझो । स्याद्वादी कहता है कि जो विशुद्ध ज्ञानके उत्पन्न होनेका नाम मोक्ष कहा है उसमें इतना सशोधन और कर दो कि विशुद्ध ज्ञानके संतानकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष

है तो यह सही बैठ जाता है। विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिमें आगे न रहा ज्ञान और विशुद्धज्ञानकी संतानकी उत्पत्ति कहनेपर यह सिद्ध होता है कि यह ज्ञान आगे भी अतिविशुद्ध रहेगा। जैसे मुक्ति ग्रवस्थामें केवल ज्ञान हुआ तो ग्रव केवल ज्ञान, केवल ज्ञान, इसकी ही संतान चलती रहेगी। अभाव न होगा, पर अणिकवादमें ज्ञानके संतानका अभाव हो जाता है ऐसा विशुद्ध ज्ञानको माना है। संतान होना, ज्ञानकी संतति होता यह मानना पड़ेगा। और, मानते भी हो कुछ सीमा तक। किन्तु वह चित्त की संतति अन्वयसहित है अर्थात् उसके आत्मारभूत आत्मा है। ज्ञान स्वतन्त्र एक एक पदार्थ नहीं है, एक पदार्थ तो आत्मा है और उस आत्मामें उत्तरोत्तर ज्ञान चलता रहता है। जब वह ज्ञान रागादिरहित विशुद्ध होता है तब उसका नाम मोक्ष है। जब यह ज्ञान विकृत चलता है, कल्पनाओं सहित चलता है तब इन ज्ञानोंका नाम है संसार। तो एक सात्मा मानना पड़ेगा, क्योंकि जो बैंधा है वही तो छूटेगा। जब बन्धन माननेंगे तो मोक्ष मानना पड़ेगा। अब एक समयमें ज्ञानपदार्थ उत्पन्न हुआ तो उसका बन्धन क्या रहा? और भी क्या रहा? एक आत्मा है, वह आत्मा अपने विश्वावोंसे बंधा है, और वही आत्मा अपने आत्माके सहजस्वरूपके ज्ञानसे छूट जाता है, तो जो बैंधा हुआ होता है वही तो छूटा करता है पर निरन्वय चित्त गंतान माननेपर बन्धन भी सिद्ध नहीं होता है और जब बन्धन सिद्ध नहीं होता तो मोक्ष भी सिद्ध नहीं होता। क्या यह रक्त है कि दूसरा तो बैंधे और तीसरा मुक्तिका उपाय करे तथा कोई चौथा छूटे। जब आत्मा नये—नये पैदा होने वाले कहते हैं तो बैंधा तो कोई आत्मा या और मोक्षका उपाय किसी दूसरे आत्माने किया और मोक्ष हुआ किसी अन्य आत्माका तो यह तो विडम्बनाकी बात है। एक सदा रहने वाला आत्मा पहिले मानो तब बन्धन और मोक्षकी बात सिद्ध हो सकती है।

अणिकवादमें बन्ध और मोक्षका अनियम-अणिकवाद बीदोंका सिद्धान्त है अर्थात् बौद्धबन्धु खण-क्षणमें नया-नया पदार्थ उत्पन्न होता है, कोई पदार्थ सदाकाल नहीं रहता, ऐसा मानते हैं। जैसे एक शरीरमें दिन भरमें अनेकों लाखों करोड़ों आत्मा उत्पन्न होते हैं। एक आत्मा नहीं है और स्याद्वाद है जैनोंका सिद्धान्त। जैन लोग ऐसा मानते हैं कि आत्मा एक है, सदा रहता है, अजर अमर है, लेकिन वह आत्मा प्रतिसमय परिरमणशील है सो यह आत्मा उपाधिके सम्बन्धसे, कर्मोंके सम्बन्धसे नाना गतियोंमें भ्रमण करता है और क्रोध, मान, माया, लोभादिक अनेक परिणाम किया करता है तथा निरग्राह अवस्थामें विशुद्ध ज्ञानुत्पत्ति परिणामन करता है। ऐसे यहाँ दो सिद्धान्त हैं ना, अणिकवाद और स्याद्वाद। तो अणिकवादियोंके प्रति कह रहे हैं स्याद्वादी कि एक आत्मा यदि नहीं मानते और मानते हो कि जुदे-जुदे समयोंमें जुदे-जुदे ज्ञानपदार्थ पैदा होते रहते हैं तो फिर मोक्षका उपाय क्यों करते? क्योंकि एक आत्मा एक समय रहा, दूसरे समय दूसरा रहा। जब अलग-अलग समयोंमें पृथक पृथक आत्मा रहता है तब मोक्ष किसको कराते हो? बैंधा भी

कोई नहीं, मुक्त भी कोई नहीं, एक समयमें पैदा हुआ। उसी समयमें नष्ट हुआ, अब किसको मोक्षकी जरूरत है? कोई बँधा हो तब तो उसे मोक्षका उपाय करना चाहिए और करता है मोक्षका उपाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि दूसरा तो कोई बँधा था और दूसरा ही कोई मुक्त हुआ है।

ज्ञानक्षणोंमें संतानकी एकताका सुभाव—इस प्रसङ्गमें क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि यद्यपि वे ज्ञान ज्ञाण-ज्ञानमें नये-नये बनते हैं लेकिन उनमें संतानकी तो एकता है। जैसे एक लालटेनके दीरककी ली नई नई निरन्तर बन रही है। जहाँ एक बूँद जली वह पहिला दीपक है वहाँ ते तका दूसरा बूँद पहुँचा तो दूसरा दिया जल रहा है, फिर तीसरा बूँद पहुँचा तो तीसरा दिया जल रहा है, तो जितने बूँद पहुँचते हैं उतने दिया जल रहे हैं लेकिन एक मालूम पड़ता है। संतान बराबर चल रही है। कुछ दीरमें अन्तर नहीं आया, इसी तरह ये आत्मा नये नये एकदम लगातार उत्पन्न होते रहते हैं। एक दिनमें अरबों खबरों आत्मा उत्पन्न हो गए। तो उन मध्य आत्माओंकी संतान एक है। संतानके मायने बाल-बच्चे नहीं, संतानके मायने सिलसिला। एक शरीरमें वे नये-नये आत्मा उत्पन्न हो रहे हैं। इन कारण ही बढ़ की मुक्ति सम्भव हो गई। अर्थात् संतान एक है ना, तो अब बँधा आत्मा लगने लगा, और जब बँधा लगने लगा तो उसका मोक्ष मान लिया जायगा। यहाँ क्षणिकवादीका अभिप्राय यह है कि आत्मा तो नये-नये उत्पन्न होते रहते हैं पर उनमें संतान एक रहती है। जैसे एक हारमें दाने तो न्यूरे-न्यारे रहते हैं पर उन सब दानोंमें एक सूत की संतान रहती है। उस एक सूतमें पिरोये हुए होनेसे हारके उन दानोंमें प्रभाव बन जाता है। इसी तरहसे उन दानोंकी भाँति आत्मा तो न्यूरे-न्यारे हैं एक ही शरीरमें पर उनमें संतान एक लग रही है।

संतानकी एकताके कथनमें आत्मद्रव्यका आयातत्व—संतानकी मान्यता-पर क्षणिकवादियोंसे पूछा जा रहा है कि उम संतान शब्द का अर्थ क्या है? अथवा संतान शब्दसे जो तुमने समझा, दूसरेको समझाते हो वह बात बास्तविक सत् है या नहीं? यदि बास्तविक सत् कहने लगांगे कि हाँ संतान बास्तवमें है, कोई पदार्थ है संतान, तो उसीका नाम हम अत्मा कहते हैं। कहते हो कि संतानमें अनेक ज्ञान उत्पन्न हो रहे हैं और स्याद्वाद कहता है कि एक आत्ममें क्रमसे नये-नये अनेक ज्ञान उत्पन्न होते हैं, तो संतान को या आत्मा कहो, जो उन सब पदार्थोंमें रहता है ऐसे एक पदार्थ के माने पदार्थकी सत्ता नहीं रह सकती। यदि कहो कि संतान तो कल्पनामात्रसे सत् है बास्तवमें संतान कोई वस्तु नहीं, तो एक तो कोई रहा ही नहीं। संतान बास्तविक रहा नहीं। जिस किसी भी शरीरमें जितने ज्ञानक्षण आत्मा उत्पन्न हो रहे हैं अरबों खबरों उन सब आत्माओंमें, उन ज्ञानोंमें जब कोई एक वस्तु न रही तो अर्थ

हुआ कि कोई तो बंधा है और कोई छूटता है। फिर मुक्ति के लिए प्रवृत्ति नहीं हो सकती है।

उदाहरणपूर्वक ज्ञानक्षणोंमें उपादान भूतसत्त्वकी सिद्धि - जैसे एक नाटक में दिखाते कि एक क्षणिकवादी सेठ था, था वह कंजूत। उसकी गाय एक ग्वाला चराने ले जाता था। एक माह तक चराने के बाद ग्वालाने जब चराईके दाम माँगे तो वह सेठ यथा कहता कि जिसनेतुम्हें गाय चरानेको दी थी वह तो अब रहा नहीं क्योंकि आत्मा धरण-क्षणमें नये-वये उत्पन्न होते हैं। जिस आत्माने तुम्हें गाय चरानेको दी थी उसके मिट जानेके बाद तो करोड़ों आत्मा और उत्पन्न हो चुके। अब तुम किससे माँगते हो? कौन तुम्हें चराई देगा? तो ग्वाला बड़ा दुःखी हुआ कि यह पैसा भी नहीं देता है और बहाना भी बड़ा दार्शनिक दूँख रहा है। तो दूसरे दिन ग्वालाने गाय को अपने घर बांध लिया। सेठके घर न भेजी। अब सेठ उस ग्वालाके घर पहुँचा कहा भाई तुम गायको घर क्यों नहीं लाये! तो ग्वाला कहता है कि सेठ जी जिसको तुमने गाय दी थी वह तो आत्मा रहा नहीं वह तो नष्ट हो चुका। उसके बाद करोड़ों नये आत्मा बन गए और जिसकी गाय थी वह भी आत्मा नहीं रहा तो अब तुम घर बैठो गाय तुम्हें न मिलेगी। तो सेठने उस ग्वालेको दाम दिया, क्षमा मांगा तब गाय मिली तो यहाँ ही समझिये क्षणिकवादमें क्षण-क्षणमें जब नये-नये आत्मा पैदा होते रहते हैं। तो अब वह देखिये बन्धनमें तो इस समयमें हूँ। क्षणियोंका दुःख योग रहा हूँ अब ग्राले ज्ञानक्षणे आगले समयमें कुछ कुछ सम्यग्ज्ञान किया तो दूसरे आत्माने किया फिर तप-इचरण किया तो किसी अन्यने किया, और मोक्ष हुआ तो किसी अन्यको हुआ। तो ऐसे मोक्षमें कौन पढ़ते करेगा कि मरें तो हम मोक्षका उपाय करके और मोक्ष हो किसी दूसरेका। तो वहाँ बन्धन मोक्षकी कोई ध्यवस्था नहीं बनती।

एकत्व ध्यवसायसे एकको बद्ध और मुक्त माननेपर प्रश्नोत्तर-प्रब यहाँ क्षणिकवादी कह रहे हैं कि यद्यपि वे आत्मा अत्यन्त न्यारे न्यारे और अनेक हैं। एक शरीरमें जितने आत्मा उत्पन्न होते हैं वे सब भिन्न-भिन्न हैं अनेक हैं लेकिन उनमें एकत्वका अभिप्राय मजबूत लग रहा है। मैं वही आत्मा हूँ जो कल था। यद्यपि जो कल था वह मैं नहीं हूँ, तबसे तो अब तक करोड़ों आत्मा उत्पन्न हो गए, लेकिन एक नेका अभिशय रहता है इसलिए उसका यह संकलन बनना है कि मैं बैंधेहृषि आत्माको मुक्त करूँगा। तो आत्मा न्यारे-न्यारे है, पर उनमें एक कलना बन गयी है कि मैं वही हूँ जो कल था और इस एकत्वके अभिप्राय बन जानेसे फिर यह बात बन जायगी कि मैं बद्ध आत्माको मुक्त करूँगा। सो मोक्षका प्रयत्न करने लगता है। तब तो इसमें निर्विकल्प की भावना तो नहीं बनी। नैरात्मदर्शन तो नहीं हुआ अर्थात् आत्मा नहीं है कुछ वह

सब ज्ञान ही ज्ञान है और वह एक ही समय रहता है। यह बुद्धि तो अब नहीं रही और इसी बुद्धिसे तुम मोक्ष मानते हो और बुद्धि करली मैंने एकताकी कि मैं बँधा हूँ, उस बेंधे ही आत्माको मुक्त करेंगा, तब नैरात्मदर्शन कहाँ रहा? यदि कहो कि शास्त्र पढ़ लेनेसे उस निविकल्प क्षणिकका अनुभव हो जाता है तो, फिर एकत्वका सिद्धान्त मूठा होगा फिर भी बताओ बद्धकी मुक्तिके लिए प्रवृत्ति कैसे हो? फिर यह कहना व्यर्थ है कि मोक्ता तो कोई है नहीं, कौन छूटे? सब न्यारे-न्यारे आत्मा हैं। तो यद्यपि मोक्ता कोई नहीं है फिर भी जो एकपलेका भाव बन रहा था, मैं वही हूँ जो पहले था, ऐसा जो विद्याभाव बन रहा था उसको दूर करनेके लिए प्रयत्न होना है।

आत्मद्रव्य माननेपर बन्ध मोक्षकी व्यवस्था भैया! प्रतीतिसिद्ध सही सीधी बात मानना चाहिये कि जो ज्ञान ज्ञानकी संतति चल रही है, ज्ञानके बाद ज्ञान, ज्ञानके बाद ज्ञान, ये लगातार ज्ञान पैदा हो रहे हैं, इनका उपादानभूत कोई एक आत्मद्रव्य है। उस आत्माके ये ज्ञानगुण हैं और उस ज्ञानका प्रतिसंयं नया-नया परिणामन चलता है। आत्मा अविनाशी एक द्रव्य है। यह मानना ही पड़ेगा और जब आत्मा मान लेते हों तो बंध मोक्ष सब बन गया, आत्मा है आज यह मलिन है उसका ज्ञान द्वृष्टि है रागादिक सहित है और यह अपने संस्कार अच्छे बनाये, मम्यज्ञान उत्पन्न करे तो इसका यह मलिन भाव दूर हो जायगा और वह मुक्त हो सकता है। तो एक आत्मतत्त्व मानकर फिर यह कहना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होनेका नाम मोक्ष है सो तो बात धृष्टि होती है पर आत्मा न माननेपर फिर कहना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष है उसकी सिद्धि ही नहीं हो सकती, क्योंकि सारे ज्ञान मान लो, तिसपर भी अगर उनमें आधारभूत कोई एक जीव द्रव्य नहीं है तो बंध मोक्षके लिए कौन प्रवृत्ति करे? किसको जल्हत है कि मैं छूट जाऊँ? वे सब न्यारे न्यारे हैं ही। इससे आत्मा माना, और आत्मा है ज्ञानका पुञ्ज। ज्ञान उसका स्वभाव है और उस ज्ञानका परिणामन होता है। जब शुद्ध परिणामन होता है तो मोक्ष है।

ज्ञानक्षणोंमें अनुयायी जीवद्रव्यकी प्रसिद्धि – अब यहाँ क्षणिकपना पूनः कह रहे कि भाइ! एक आत्मा ज्ञानक्षणोंमें अनुयायी कैसे मानले? अर्थात् जितने ज्ञान पैदा हो रहे हैं एक शरीरमें, उन ज्ञानोंका आधारभूत आत्मा कोई नहीं है क्योंकि वे सब ज्ञान न्यारे-न्यारे हैं। एक दूसरेसे विलक्षण हैं। उनकी सत्ता अत्यन्त जुदी-जुदी है। यदि अत्यन्त जुदी-जुदी सत्ता वाले ज्ञानोंमें एक अनुयायी जीवद्रव्य मान लिया जायगा तो किर सांकर्य और अन्वय हो जायगी। अतः ज्ञानक्षणोंमें कोई एक रहने वाला जीव कैसे माना जा सकता है? आचार्य उत्तर देते हैं कि यह तो स्वसंवेदनसे सबको तीति हो रही है कि मैं वही आत्मा हूँ। सब जीव मान रहे हैं कि मैं जीव हूँ। सबको ध्यान है। अहं प्रत्ययसे सबको जीवकी प्रतीति चल रही है। मैं हूँ और सुबह भी मैं था, कल भी मैं था, इस जन्मसे पहले भी मैं था। जो नहीं होता

वह कभी उत्तम नहीं हो सकता । यह वेदान्तियोंका सिद्धान्त है कि जो पदार्थ है ही नहीं, असत् है, वह असत् कभी उत्पन्न नहीं होता और जो पदार्थ है सत् है उसका कभी विनाश नहीं होता, चाहे सकले बदल जायें पर सत्पदार्थका कभी नाश नहीं हो सकता । जैसे एक मिट्टी है, तो उसका कोई नाश कर सकता है क्या ? घड़ा बन गया तो भी मिट्टी रही, खउरिया कर दी तो भी मिट्टी रही, उसे पीस दिया और फैला दिया तो भी पुदगल स्कंच रहा और कभी वह मिट्टी पेड़है । भी बन जाय, उसका परमाणु द्रुतरूप हो जाय तो भी पुदगल तो रहा । जो सत् है उसका कभी विनाश नहीं हो सकता । एक भी उदाहरण ऐपान मिलेगा कि जो परमाणु है या कोई चीज़ है उस चीज़का कभी बिलकुन नाश हो जाय । तो सब ग्रनुभव कर रहे हैं कि मैं हूँ तो जो मैं हूँ जो यह सत् है, इसका कभी नाश नहीं हो सकता है और न यह कोई नया कुछ है । इससे सिद्ध है कि मैं एक चैत्यव्यभाव वाला जीव द्वय हूँ और अनादिसे हूँ, अनन्त काल तक रहूँगा ।

अलौकिक कार्य करनेमें भलाई -भैया ! जब मुझे अनन्त काल तक रहना है तो किस तरहसे रहना है सो तो निर्णय रखो ! क्या इसी तरह जन्म मरण करते हुए, विषय कषयोंके परिणाम करते भोगते हुए दुखी रहकर रहा है ? इससे तो लाभ है नहीं तब ऐपा उपाय बनावें कि जिससे जन्म-मरणकी परम्परा मिटे । लोग चाहते हैं कि मैं जीवनमें ऐपा काम कर जाऊँ जो बहुत महत्वपूर्ण है, किसीने नहीं किया हो कोई खास काम कर जाऊँ । और ! जीवनमें खास काम क्या हो सकता है ? सो तो निर्णय रखो । भारी सम्पदा जोड़ लेना यह जीवनका खास काम नहीं । देशमें अग्नी नामवरी फैला देना यह भी कोई खास काम नहीं अथवा परिजनोंसे स्नेह बढ़ाकर उनकी रागभरी बातोंको मुनकर आपने आपमें बड़पन मन्दसूक करना यह कोई खासा काम नहीं । ये मब तो अनादि कालमें इस जीवने अरेक भवेमें किये । खास काम तो यह है कि मैं आपने स्वरूपको जान जाऊँ कि मैं सबसे निराला केवल ज्ञान-प्रकाशन आत्मतन्त्र हूँ और उसका ऐसा ज्ञान बनाऊँ उसका निरन्तर अनुभव करूँ कि फिर वही सत्यकाश मेरेमें बराबर बना रहे ताकि मब प्रकारके रागद्वय मोह संकल्प विकल्प दूर हो जायें, इससे तत्काल भी लाभ होता है और भविष्यमें भी इसका बड़ा भारी लाभ है । यही है मोक्षका उपाय । यह बात तो तब बन सकती है जब कोई एक आत्मद्वय माना जाय । देखो, सबको अपने विश्वासमें बना हुआ है कि मैं कोई आत्मा नहुँ, जो विश्वासमें है, जो प्रतीतिमें आ रहा है उसका विरोध कैसे ? विरोध तो उसका होता है कि जो बात पाई न जाय ।

प्रत्यभिज्ञान प्रत्ययसे शाश्वत आत्मद्रव्यकी प्रसिद्धि - और भी सुनो यदि आत्मा न हो तो व्यवहारमें, व्यापारमें, प्रत्ययभिज्ञान ज्ञान नहीं बन सकता । प्रत्यभिज्ञान अनेकविषय होते हैं जिनमें एकत्र प्रत्यभिज्ञान भी है । एकत्र प्रत्यभिज्ञान कहते हैं

उस ज्ञानको जिक्षा जानमें यह प्रतीति रहती है कि मैं वही हूँ जो कल था । इसका नाम है एकत्व प्रत्यभिज्ञान यह मनुष्य उस वर्ष भी था और वही मनुष्य अब भी है । तो इस प्रत्यभिज्ञानमें एकत्व विषय है । तो अपने आपमें एकत्वका ज्ञान है कि नहीं ? किसीको हजार रूपया उधार दिया तो ज्ञान तो बना है ना कि उसे दिया था, मैंने दिया था । तभी तो उसका रोजगार चल रहा है । यदि क्षणिक क्षणिक आत्मा हो तो रोजगार कीर करे ? व्यवहार कैसे बने ? ? क्षणिकादी यहाँ कह रहे हैं कि वास्तवमें कोई एक आत्मा नहीं है, लेकिन आत्माके बारेमें कल्पना बन गयी है कि मैं वही एक हूँ । तो जब एकत्वकी कल्पना बन गई, जैसे कि बाहरके पदार्थमें भी एकत्वकी कल्पना बन गयी । तो यह प्रत्यभिज्ञान बनने लगा । इस जीवने अपने आपके शारीरमें होने वाले नाना ज्ञानक्षणमें एकताकी कल्पना बनायी । मैं वही हूँ जो वर्षोंमें चला आया हूँ । और दूसरे जीवों शारीरोंमें भी नाना जीव उत्पन्न हो रहे हैं उनमें भी केवज कल्पना बन गयी कि यह वही है जो वर्षोंसे चला आ रहा । तो ऐसी एकपनेकी कल्पना बन जानेसे व्यवहार चलने लगता है । समोन्नान देते हैं कि यदि यह एकपना केवल कल्पना मात्रका है, प्रत्यभिज्ञान यदि एकत्वका विषय कर रहा है तो जिस समय यह अनुमान किया कि जितने पदार्थ हैं वे सब क्षणिक हैं, सत् होनेसे । तो जिस समय पदार्थोंके क्षणिकपनेका निष्चय किया जा रहा है उस समय तो एकत्वका ज्ञान नहीं रहा क्योंकि कल्पनामें एकत्वके अभिप्राय बनानेमें और क्षणिकपनेका ज्ञान करनेमें परस्पर विरोध है । वहाँ प्रत्यभिज्ञान नहीं ठहर सकता । जब क्षणिक है एसा निष्चय किया जाय तो वहाँ वही मैं हूँ जो पहिले था यह कैसे बन सकता है ? कहते हैं किनद बने एकत्वका ज्ञान तो यह भी बात ठीक नहीं है क्योंकि सभी देहातीसे लेकर बड़े-बड़े विद्वानों तक सबको यह एकत्वका प्रत्यभिज्ञान हो रहा है । यदि नहीं मानते जीव, नहीं मालूम पड़ता कि वह एक है तो उसी समय निषिक्त्व दर्शन हो जानेसे फिर सभी राग सबके घूट जायेंगे और सबका भोक्ष हो जायगा ।

अहंप्रत्ययत्वेद्य आत्मद्रव्यमें बन्ध मोक्षकी व्यवस्था-निष्कर्ष है कि सभी जीवोंका अपने बारेमें यही निराय है और प्रतीति है कि मैं वह हूँ जो पहिले था । अब मेरा जो वास्तविक स्वरूप है उस स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो जाय तो ये रोगद्वेष छूटे और मुक्ति हो जाय । जब भूठा ज्ञान लग रहा है । बाह्य पदार्थोंको हम अपना मान रहे हैं तो सासारमें रहते रहते हैं । गलती तो है हमारी, परमें हूँ कोई एक और गलती कर रहा हूँ और यही अपनी गलती छोड़ देगा यही स्वयं ज्ञानमें आ जायगा, यही समाधिभाव उत्पन्न करेगा तो इसीको भोक्ष हो जायगा । तो एक जीव मानता ही पड़ेगा अपने आपको कि मैं वही एक आत्मा हूँ । अब मैं बन्धनमें हूँ और आगे मैं मुक्त हो जाऊँगा । यदि इस अभिप्रायको जैसा कि सब लोग ज्ञान रहे हैं कि मैं वही एक हूँ इसे अभमकी बात मानने लगे तो फिर जो प्रत्यक्ष दिख रहा है सब सिद्धान्त भ्रान्त हो जायेगे । जितने भी प्रत्यक्ष हो रहे हों, बाहरमें हो रहे हों, अन्तरमें हो रहे हों सब

भावोंमें एकत्वके ढङ्गसे प्रतीति होती है। जैसे यह चौकी वही है जो पहिलेसे देखते आये हैं, या इसमें नाना चौकियाँ और पैदा हो रही हैं। हर समयमें एक नई चौकी बन रही है ऐसी कथा बात है? श्रेर! बिल्कुल शशु निर्णय है कि चौकी वही है। ऐसे ही अपने बारेमें सबको स्वरूप निर्णय है कि मैं वह आत्मा हूँ जो पहिले था और आगे भी रहूँगा। बाह्य पदार्थोंमें और अपने आध्यात्मिक भावोंमें एकत्वके ग्राहकरूप ही सारे प्रत्यक्ष चल रहे हैं। तो यह प्रत्यक्ष भ्रान्ति नहीं है। ये सब सत्य हैं, लेकिन ये सब पर्यायरूपमें स्थितियाँ हैं। द्वच्छिंशसे तो इस चौकीमें जो केवल एक एक परम रण हैं वे सत्य हैं। परमाणुओंके समूहसे एक पिण्ड बन गयी चौकी और यह चौकी द्वृकि बिखर जायगी और चौजीरूप न रहेगी तब तो यह चौकी गलत है, पर इसमें रहनेवाले जो परमाणु हैं वे बराबर सत् हैं। इसी प्रकार आत्मा जो चार गतियोंमें अमण कर रहा है तिर्यञ्च, नारकी, मनुष्य, देव बन रहा है यह तो उसका मायारूप है, पर इन सबमें चलने वाला जो एक आत्मा है वह आत्मा मायारूप नहीं है। प्रत्यभिज्ञानसे चस्तुकी एकतः बराबर जानी जा रही है। तो जो अनुभवमें आ रहा उसका भी विरोध किया जाय तब तो जगन्में कोई व्यवहार ही नहीं बन सकता है। इससे मानना होगा कि मैं आत्मा एक हूँ और इस समय अपने विपरीत भावोंके कारण बढ़ हूँ और सम्बन्धान करके अपने स्वरूपकी सावधानी करके जब अपने आपको सम्भाल नूँगा तो मुक्त हो जाऊँगा।

आत्मामें विशुद्धज्ञानोपत्तिकी मोहरूपता—मुक्त होनेका मतनब यही तो है कि जो मैं राग्से, स्नेहसे जकड़ा हुआ हूँ वे रागके बन्धन टूट जायें। मैं अपने ही भावोंसे बैंधा हूँ, मैं अपने ही स्वभावको जान लूँ और उन रागादिक भावोंको तोड़ दूँ लो मुक्त हो गया। कोई स्त्रीसे बैंधा है क्या? हम तो यहाँ सब भाव्योंको श्रकेन ही देख रहे हैं। स्त्रीसे बैंधे हुए कोई नजर नहीं आ रहे हैं। सभी स्वतन्त्र बैठे हैं। लेकिन स्त्रीके बारेमें जो आपके विकल्प चल रहे होंगे—कि अमुक मेरी स्त्री है, वह बड़ी विनयशील है आदिक। तो आप अपने इन भावोंसे ही बैंधे हैं न कि खीसे। क्या कोई संस्थासे बैंधा है? संस्थासे कोई नहीं बैंधा है, पर उस संस्था सम्बन्धी जो विकल्प बना लिए हैं कि मैं इस संस्थाका अधिकारी हूँ इसकी सारी जिम्मेदारी मेरे ऊँर है आदिक इन भावोंसे आप बैंधे हैं न कि संस्थासे। तो इस राग भावका बन्धन मिटाना है, इसीका नाम मुक्ति है। यह बात तब सम्भव है जब एक आत्माको माना जाय कि यह मैं एक हूँ, अभी बैंधा हूँ, ज्ञान करूँगा तो मैं मुक्त हो जाऊँगा। तो एक आत्मा मानकर फिर कहो कि निर्मल ज्ञान हो ज नेका नाम शोक है, तो ठीक बन जायगा।

अनेक भाव होनेपर भी अनुभूयमान आत्मैकत्वकी प्रसिद्धि—देखिये! आत्माका एकत्व अर्थात् सबको अपना अपना आत्मा एकत्वरूपसे अनुभवमें आ रहा है, इसमें सुख दुःख विकल्प आदि अनेक भाव हो रहे हैं, इस अनेकताके कारण यदि अनु-

भवमें आये हुए एकत्वका विरोध करोगे तो इस भेदभणिकवादमें न तो ज्ञानक्षणोंका स्वरूप बन सकेगा और न नीलादिक अर्थोंका स्वरूप बन सकेगा। ज्ञानमें तीन रूप होते हैं (१) ग्राहकरूप (२) ग्राहकरूप और (३) सबेदनरूप। अर्थात् पूर्वज्ञानसे बोधरूपता ग्रहणमें आती है पदार्थोंके आकार ग्रहणमें आता है यह तो ग्राह्य है और ज्ञान ज्ञाननान्तरको बोधरूपत्व सों। देता है ग्रहण करता है, ज्ञानसे बोधरूपताको ग्रहण करता है, ज्ञान पदार्थोंका आकार ग्रहण करता है यह है ग्राहकरूप तथा ज्ञान स्वरूपतः ज्ञानरूप है, सो संवेदन करना स्वरूप हो है यह है सवित्तिरूप। तो इन तीनों विकल्परूपोंसे अध्यासित (प्रकस्ति) ज्ञानमें अनेकता आ गई सो अनेकत्वक साथ निरंश ज्ञानकी इकाईके साथ विरोध हो जानेसे ज्ञानका स्वरूप ही न रहा। इसे प्रकार अनुभ्यमान एकत्वका अनेकत्वसे विरोध मोननेपर पदार्थका भी स्वरूप न बनेगा क्षणिकवादमें पदार्थ है नील, कृष्ण, कटु, मधुर आदि निरन्वय भावक्षण। तो उनमेंमें उदाहरणार्थ एक नीलक्षणको ले लीजिये। नीलक्षणमें स्वरूपकर्तृत्व श्री परकार्या कर्तृत्व ये दो विरुद्ध धर्म पाये जाते हैं अर्थात् नीलक्षण उत्तरनीलक्षणको तो उत्तरकरता है और दीतादिक्षणोंको उत्तर नहीं करता। तो इस तरह कर्तृत्व और अकर्तृत्व परस्पर दो विरुद्ध धर्मोंसे अध्यासित नील स्वलक्षणमें निजी एकत्वका, निरंश एकास्तित्वका विरोध हो जायगा, तो नीलक्षणका स्वरूप ही क्या रहा? किर तो तुम्हारे सब सिद्धान्तका लोग हो जायगा। अतः आत्ममें अनेक भाव होनेपर भी स्वरूप के अनुभ्यमान एकत्वकी सिद्धि मानना ही पड़ेगी।

सुषुप्तावस्थामें ज्ञानके सद्ग्राव व अभावकी चर्चा—इस प्रकरणमें तीन सिद्धान्तोंकी बात चल रही है—एक तो वैशेषिक जिनका विशेषवाद है सिद्धान्त है और एक क्षणिकवादी जो क्षण—क्षणमें आत्माको, सभी पदार्थोंको उत्तरकरता होना मानते हैं, और एक स्यादादी जो कि द्रव्योंको नित्यानित्यात्मक मानते हैं। विशेषवादमें उप्रकारके पद थे न्यारे—न्यारे हैं द्रव्य गुण, पर्याय, सामान्य, विशेष, समवाप और उत्तरां पदार्थ है अभाव। इस सिद्धान्तके अनुसार आत्मामें ज्ञानस्वरूप नहीं है। आत्मा ज्ञानरहित होता है, उसका स्वरूप चैतन्य है केवल। ज्ञान न हो और चैतन्य हो मात्र ऐसा क्या स्वरूप हो सकता है? इस सम्बन्धमें उन्होंने यह कलना की कि ज्ञानका काम तो ज्ञानना है, जिसमें ये सब पदार्थ समझमें अ ते हैं। यह अनुक चीज है, यह इस आकार प्रकारकी है और चैतन्यके मायने है कि यह ज्ञान तो न रहे किन्तु साधारण चेतना रहे। कुछ ऐसी योग्यता है कि जिसमें ज्ञान जुड़े तो ज्ञान जुड़कर फिर सब पदार्थ ज्ञानते रहें। कुछ और योड़ा सीधा समझना हो तो कुछ कुछ अंदाजा किया जा सकता है दर्शनसे। जैसे कि स्यद्वादियोंने, जैनोंने दर्शनगुण माना है तो दर्शनगुणमें क्या होता है कि ज्ञान नहीं होता किन्तु सामान्यतया चेतना बनी रहती है, तो उससे कुछ समानताका स्वरूप रखने वाला वैशेषिकोंका चैतन्य है। ये वैशेषिक सोये हुएकी अवस्थामें ज्ञान नहीं मानते या तब ज्ञानका तिरोभाव मानते। हाँ चैतन्य

तो ग्रात्माका स्वरूप है सो वह रहता ही है। इस दृष्टिसे सोये हुयेकी हालत जो ऊपर से जो दुनिया देखती है कि यह पुरुष कुछ ज्ञान नहीं कर रहा है सो ज्ञान नहीं है, पर हाँ इसके अन्दर चेतना जल्द है। जग जानेपर वह फिर जानते लगता है। मरे हुए और सोये हुए इन दोनों प्रकारके पुरुषोंमें फक्त तो है। तो सोये हुयेमें चेतना है, ज्ञान नहीं है और मरे हुएमें ज्ञान भी नहीं है और चेतना भी नहीं है ऐसी दो बातोंका ये वैशेषिक मेद डालते हैं।

सर्वथा अभिभूत ज्ञानमें स्वकार्यकाग्निताका अभाव – इस प्रसङ्गमें यह बात चर्चामें आयी थी कि सोये हुएमें यदि ज्ञान न हो तो किर जग जानेपर वह शयन का अनुभव कैसे बता देता है? इस सम्बन्धमें वैशेषिकका कथन है कि सोये हुएमें ज्ञान तो नहीं रहा पर चैतन्य तो रहा, स्वपरकाशक स्वभाव तो रहा, तो उस स्वभावके ही कारण उसमें सोई दशाकी बातका निष्पत्ति करनेकी सामर्थ्य आ जाती है, इसका समाधान करते हैं कि यह बात ठीक नहीं, क्योंकि अनुभव करना, जानना सोये हुएमें भी तो चलता रहता है। सोया हुआ मनुष्य भी तो अन्दर ही अन्दर अपने उन विकल्पोंसे जैसा कि भोतरी संस्कार है कुछ न कुछ चिन्तन करता रहता है, उसीका ही तो रूप यह स्वप्न आता है। सोये हुएमें जो स्वप्न आता है, बड़ी बड़ी बातें देख ली जाती हैं तो वह क्या चीज़ है? मनकी ही तो कल्पनायें हैं। ज्ञानका ही तो काम है। और क्योंकि सर्वत्र अभिभूत अर्थ ही अपना कार्य करता है सो स्वापदशायें भी अपनी सीमामें अनभिभूत ज्ञान है। वही ज्ञान ज्ञान कर सकता है जो अनभिभूत हो, उस ही ज्ञानमें यह सामर्थ्य है कि ज्ञानका कार्य कर सके। यदि अनभिभूत ही पदार्थ ज्ञानका कार्य करे यह न मानोगे तो फिर जब किसी आगके पास कोई प्रतिबन्धक मणि रख दी जाय तो भी आगको जलानेका काम करना चाहिये। प्रति-बन्धक मणि मन्त्रके आगे आग क्यों अपना काम नहीं करती? यद्यपि मणिसे आग अभिभूत हो गयी, उसकी शक्ति रुक गई यह तो अविरुद्ध है फिर भी अभिभूत होनेपर भी कार्य करने वाला मान लिया तो आग भी वहाँ जलानेका काम करे। चाहे कोई मन्त्रवादी हो या कोई विरुद्ध दवा लगा दी गई हो फिर भी जला दे, पर वहाँ वह आग जलाती तो नहीं? अथवा जब कोई अनध्यवसाय ज्ञान होता है जैसे कोई मनुष्य चले जाते हुएमें किसी दूसरी तरफ खाल किए हुए बड़ी जल्दी गमन कर रहा है तो रास्ते में पैरके नीचे कोई तिनका छू गया तो थोड़ासा उसे ऐसा खाल आता है कि छू गया पर उस तरफ कोई ध्यान नहीं तो उसका निर्णय नहीं रहता कि क्या छू गया। तो अब हुआ क्या कि उस समय उसका ज्ञान अभिभूत था अर्थात् दूसरी जगह जो चित्त लगा हुआ है, उस दूसरी जगह चित्त लगा रहनेसे उसे अब अन्य चीज़का ज्ञान रुका हुआ है, पर रुका हुआ भी ज्ञान कार्य करने वाला तो वहाँ भी स्पष्ट सन्देश होना चाहिये, ज्ञान होना चाहिये कि क्या चीज़ थी जो पैरमें लग गयी? पर ज्ञान तो नहीं होता। यदि यह कहो कि उस समय मन और जगह लगा है इसलिए स्मरण नहीं

होता कि पैरमें क्या खूं गया है ? तो कहते हैं कि यही बात तो सोई हुई अवस्थामें है। सोई हुई अवस्थामें गिरत्व आ गया अर्थात् तेज निदाके कारण वह मूर्छितसा हो गया है इस कारण सोई हुई अवस्थामें उसे स्मरण नहीं रहता है।

स्वाप (शयन) अर्थका निरूपण - और भी देखिये ! अनध्यवसायके विषयका निरूपण नहीं होता, फिन्नु सोनेके अर्थका निरूपण भी हो सकता है क्योंकि जगनेपर सबको यह ख्याल आ जाता कि मैं इतने समय तक निरन्तर सोया हूं। देखो मैं अद्वित्रिमें खूब निरन्तर सोया, किर कुछ जगा, किर सोया, किर जगा, लगातार सो नहीं सका, और इहनों देर मैं लगातार सोता रहा। ऐसा खगल है ना जगनेपर तो इससे सिद्ध है कि सोनेका भी उसे अनुभव है। जो मनुष्य सोया रहता है उसे सोने का भी अनुभव रहता है कि मैं सोया हुआ हूं। उच समय यद्यपि सोया हुआ हूं यह विकल्प नहीं करता, लेकिन जगनेपर सोचता है कि मैं खूं सोया हुआ था। तो जिस चीजका अनुभव नहीं होता उसका स्मरण नहीं हुआ करता। यदि सोनेका अनुभव नहीं होता उसे सोई हुई हालतमें तो सोनेसे उठनेके बाद मैं खूब सोया, ऐसा स्मरण नहीं बन सकता था। जब जगनेपर यह स्मरण होता है मैंने खूब सोगा तो इससे सिद्ध है कि सोये हुएये उसे सोनेका अनुभव था। हाँ, सोनेका जिस तरहका अनुभव होता है वही अनुभव था। कोई पुरुष आज ख्याल करता है कि कल मैंने यह खाया था तो कल खानेका उसे अनुभव था ना, तभी तो आज ख्याल करता है। पहिले जिस चीजका अनुभव किया हो उसका ही तो ख्याल आता है। बिना अनुभव की हुई चीज का ख्याल नहीं आया करता। तो सोनेसे उठन्हर जगे हुए पुरुषको जो यह खगल आता है कि मैं आज खूब सोया, तो सोनेका अनुभव भी चलता रहता था तब उसे ख्याल आया। यह बात नहीं है कि सोई हुई अवस्थामें ज्ञान नहीं रहता है यह नियम है कि अनुभव की हुई बातका ही खगल आया करता है। यदि बिना अनुभव किए हुए भी सोनेका खगल आ जाय अर्थात् यह माना जाय कि सोई हुई हालतमें सोनेका अनुभव तो न था पर जग जानेका ख्याल आ गया कि मैं खूब सोया था। तो बिना अनुभव किए यदि खगल आने लगे तो सभी पदार्थोंका अटरट बिढ़ज्ज्वल खूब ख्याल आये, क्योंकि तुमने यह मान लेया कि अनुभव किए बिना भी स्मरण हो जाया करता है, तो घट, पट, घर आदिक पदार्थोंना अनुभव तो बिल्कुल न हो और स्मरण आने लगे, पर ऐसा होता तो नहीं, इन्हें सिद्ध है कि सोई हुई हालतमें भी ज्ञान बराबर रहता है। अब वहाँ तेज निदाके कारण इदिय अभिभूत हो गई हैं, इन्दिय काम नहीं कर रही हैं, भर करें इदिय काम, लेकिन जो मन दबा हुआ होनेपर भी भीतर ही भीतर कुछ न कुछ अनुभव करता है। सोनेका भी एक अनुभव है।

सुषुप्तकी तरक्ष मत्त व मूर्छित दशामें ज्ञानके अभावका निराकरण -  
अब यहाँ शंकाकार कहता है कि सोये हुएमें भी ज्ञान रहता है यह सिद्ध करनेके लिए

जो तुमने पागल और मूर्छित पुरुषका उदाहरण दिया कि जैसे पागल लोगोंके भी ज्ञान बिगड़ जानेपर भी, कुछ ज्ञान बना ही तो रहता है, मूर्छित हो जानेपर भी, जिसने मदिरापान कर लिया और वह मूर्छित हो गया तो उसके भी मदवेदनाका अनुभव बना ही रहता है। इसी प्रकार सोधे हुएमें भी ज्ञान बना रहता है तो यह दृष्टान्त मूठा है।

पागलके अथवा मूर्छित पुरुषके ज्ञान रहता ही नहीं है। तो इस आशापर उत्तर देते हैं कि मूर्छित पुरुषमें भी ज्ञान चल रहा है। कोई मदिगानसे बेशोश हो गया उस हालत में भी उसमें बराबर ज्ञान चल रहा है यदि ज्ञान न चलता हांता तो जब बेहोशी मिट्टी है होशमें आता है तो वह यह अनुभव करता है और मैंने इन चार घटोंमें कुछ भी अनुभव नहीं किया, कुछ भी नहीं समझा। प्रेरे कुछ भी नहीं समझा इसका अनुभव उस बेहोशी अवस्थामें चल रहा था तब तो अनुभव किये हुएका यह स्मरण कर रहा है क्योंकि जितने भी स्मरण होते हैं वे सब अनुभवपूर्वक होते हैं। इससे यह मानना चाहिये कि जिस अनुभवके होते हुए आत्मा ऐसा अनुभव करता है कि मुझे कुछ भी अनुभव नहीं हो रहा है उस अवस्थामें भी अनुभव तो है ही। जैसे कोई पुरुष कहे कि आत्मा नहीं है, मैं नहीं हूँ, तो यह तो बतलावो हम यह जान रहे कि नहीं कि मैं नहीं हूँ। बस ऐसा जानन जिसमें चल रहा है बही तो आत्मा है। कोई पुरुष कहे खुब जोर से चिल्नाकर कि मेरे जीभ ही नहीं हैं तो कोई मान लेगा क्या इस बातको? और जिससे बौल रहा है वही तो जीभ है। इसी प्रकार जिस ज्ञानसे यह मनुष्य कहता है कि मेरा आत्मा नहीं है, और वही ज्ञान तो आत्मा है। तो इसी तरह जो अनुभव कर रहा है कि मेरे कुछ अनुभवमें ही नहीं आ रहा तो कुछ तो अनुभवमें है। किंतु बातको सुनकर किसी कठिन चर्चाको सुनकर कोई श्रोता कहे कि हमारी समझमें कुछ नहीं आ रहा है तो क्या यह बात सही है? और मेरी समझमें नहीं आ रहा यह तो समझमें आता कि नहीं? यह भी एक समझ है। मेरी समझमें कुछ नहीं आ रहा इसका भी नाम समझ है यह समझ तो आ रही। तो मूर्छित अवस्थामें कुछ अनुभव नहीं हो रहा बाहरी बातोंका, वहाँ सद वेदनाका तो अनुभव हो रहा है। और उससे वह दुःखी है, तां जितने दुःखी हों उन सबका यह ही इलाज किया जाय कि इसे मूर्छित करो। पर मूर्छित होनेमें दुःख कम नहीं होता है बल्कि दुःख बढ़ जाता है। वैसे साधारणतया कभी कभी डाक्टर लोंग ऐसा बता देते हैं कि इसको ग्रागर नींद नहीं आती है तो यह दवा सुन्दरा दो, इसका दुःख निट जायगा। और दवा सुन्दरीनेसे वह मूर्छित हो गया उसे बाहिरी होश न रड़ी तो लोग समझते हैं कि अब इसको बेइना नहीं है, पर मूर्छित हुएकी दशामें उस वेदनासे भी अधिक वेदना है जिसको सह भी रहा है और बता भी नहीं सकता है। तो मूर्छित अवस्थामें भी अनुभव चला करता है, सोई हुई अवस्थामें भी अनुभव चला करता है। जैसा स्मरण जगनेपर या होश आनेपर होता है। जगनेपर तो यह स्मरण चलता है कि मैंने खूब सोया या कुछ कुछ सोया। और होश आनेपर यह स्मरण होता है कि मैंने तो जैसा बाहरी अनुभव चलता था वैसा कुछ भी अनुभव

नहीं किया तो सब दशाओंमें ज्ञान बरोबर अपना काम कर रहा है ।

सुषुप्तमें ज्ञानके अभावकी सुप्तके अभावान्वित ज्ञानसे व ज्ञानाभावसे सिद्धिका अभाव -- यहाँ इस प्रसंगमें दो बातें चल रही हैं परम्परमें । शकांकार तो मानता है कि सोई हुई अवस्थामें ज्ञान नहीं रहता है और स्याद्वाद कहता है कि सोई हुई अवस्थामें भी ज्ञान रहता है । अच्छा चताओ तो सही कि सोई हुई अवस्थामें ज्ञानका अभाव है इस बातको क्या सोया हुआ आदमी ज्ञान रहा है या पासमें बैठा हुआ कोई दूसरा ज्ञान रहा है? ये दो प्रश्न किये । कोई मनुष्य सो रहा है और उसमें बतलाते हो कि ज्ञान नहीं है अथ ज्ञानका अभाव हो गया है तो उसमें ज्ञानका अभाव है इस बातको कौन समझ रहा है सो तो बताओ ? यदि कहो कि सोया हुआ पुरुष है वही ज्ञान रहा है कि ज्ञानका अभाव है तो वह सोया हुआ आदमी क्या जिस ज्ञानका अभाव है उस ही ज्ञानसे ज्ञान रहा है कि मेरे ज्ञानका अभाव है ? किस ज्ञानसे ? जिस ज्ञानका अभाव है, क्या उसी ज्ञानसे समझ रहा कि मेरे ज्ञानका अभाव है या ज्ञानका अभाव होनेसे समझ रहा वह सोया हुआ आदमी कि मेरे ज्ञानका अभाव है या उनसे अलग किसी अन्य ज्ञानसे समझ रहा है कि मेरे ज्ञानका अभाव है ? यदि सोया हुआ आदमी जिस ज्ञानका अभाव है उसी ज्ञानसे समझ रहा है कि मेरे ज्ञान नहीं है तो यह तो बड़ी विरुद्ध बात कर रहे हो । उस ही ज्ञानका तो अभाव है और उस ही ज्ञानसे वह समझे कि मेरे ज्ञान नहीं है इसे कौन मान लेगा ? यदि कहो कि ज्ञानका अभाव है इस कारण समझ रहा है कि मेरे ज्ञान नहीं है तो यह बात भी अमुक्त है, क्योंकि ज्ञानका काम है ज्ञानना । और ज्ञानमें आता है कोई सत पवार्थ । तो ज्ञानके अभावसे ज्ञानना नहीं बनता । ज्ञानसे ज्ञानना बनता । ज्ञानका अभाव होनेसे मेरे ज्ञान नहीं है ऐसा नहीं जाना जा सकता । ज्ञानसे ही जाना जा सकता कि मेरे ज्ञान नहीं है अथवा मेरे ज्ञान है न समझनेसे यह नहीं परखा जा सकता कि मेरे समझमें ही नहीं आता । औरे कोई समझ है उस समझके द्वारा ही आप समझते हैं कि मेरी कुछ समझमें ही नहीं आ रहा है । ज्ञानके अभावसे ज्ञानाभाव निविच्छ नहीं किया जा सकता । अगर ज्ञानाभावसे ज्ञानका असद्वाव ज्ञान लिया तो ज्ञानाभावका ही नाम ज्ञान बनागया तो नाममें ही वहाँ फर्क रहा । बात यह है कि ज्ञानसे ही तो जाना जा सकता कि मेरे अच्छा ज्ञान है, मेरे ज्ञान है, और ज्ञानसे ही यह जाना जा सकता कि मेरे कुछ ज्ञान ही नहीं हो रहा ।

सुषुप्तमें ज्ञानके अभावकी सुप्तके ज्ञानातरसे सिद्धिका अभाव—सोये हुएमें सोया हुआ ही मनुष्य यदि अपने ही ज्ञानके अभावको ज्ञानता है तो किस साधन से ज्ञानता है यह पूछा जा रहा है ? यदि कहो कि अन्य ज्ञानसे वह सोया हुआ मनुष्य ज्ञानके अभावको ज्ञान रहा कि मेरे ज्ञान नहीं है, इस प्रकारसे सोया हुआ ज्ञान रहा है किसी अन्य ज्ञानसे तो वह अन्य ज्ञान क्या उस सोई हुयी अवस्थामें हो रहा है या जगने पर प्रबोध हुएके ज्ञानसे या पहिले जगे हुएके ज्ञानसे हो रहा है ? यदि कहो कि सोये

हुएमें ही उसका ज्ञान ऐसा चल रहा है कि मेरे ज्ञान नहीं है तो ठीक है । अब ज्ञान बिल्कुल न रहा यह बात तो न रही । एक ज्ञानसे यह भी ज्ञान रहा सोया हुआ पुष्ट कि मेरे ज्ञानका अभाव है । यदि कही कि पहिले जग रहा था और सोनेके बाद कुछ चेत गया तो पूर्व जगनेके और सुस्पृत्य चेतनेके कालमें होने वाले जो दो ज्ञान हैं-पहिले जगे हुएका ज्ञान और अब संकर उठे हुएका ज्ञान, इन दोनों ज्ञानोंसे वह ज्ञान रहा है जो उपके ज्ञान न था । तो समाधान देते हैं कि जब जग रहे थे तबका ज्ञान तो तब ही था और जब सोकर उठा हैं तबका ज्ञान तब ही है । तो दोनों दशाओंमें होने वाले ज्ञानोंके समय सोये हुएके समयकी बात तो आयी नहीं, किर ज्ञान कैसे गया । जब ज्ञान में न आये और तब भी ज्ञान जाय, याने जगनेके ज्ञानमें भी सोये हुएकी दशा नहीं आयी जगकर उठे हुएके ज्ञानमें भी सोये हुएकी दशा नहीं आयी और तिनपर भी, न आनेपर भी, अनुपल ब्यवधारण प्राप्त होने पर भी यदि सोये हुएके ज्ञानभावका ज्ञान हो जाय तो प्रत्यक्षसे ही पश्चलोकका अभाव भी सिद्ध करलो, किर अनुमान आदिककी क्या जल्लरत है ? यों तो अन्य सभी प्रमाणोंका उच्छेद हो जायगा । अतः प्रतीति सिद्ध बातका अनलाप नहीं करना चाहिये ।

**आत्माकी अविनाशिता और ज्ञानमयता -आत्मा** है वह एक भवमें एक शरीरमें कई वर्षों तक भी रहता है । जैसे मनुष्यकी जिन्दगी ८० वर्षकी है, तो वह ८० वर्ष एक ही आत्मा है, न तो वहाँ नये-नये आत्मा पैदा हुए और न यही है कि आत्मामें ज्ञान नहीं है जब ज्ञानका संयोग हाता है तब आत्मा जानता है, सोई हुई अवस्थामें ज्ञानका संयोग ढोजा हो जाता है, इसलिए सोई हुई हालतमें आत्मामें चैतन्य तो है पर ज्ञानका काम नहीं है । ये दोनों बातें सही नहीं हैं । सारे भवमें एक ही आत्मा है और इस एक ही भवमें क्या यह भव भवमें एक यही आत्मा है । जितने आत्मा हैं वे सब सदा रहते हैं और अपने अपने कर्मनुपार संसारमें जन्म मरण किया करते हैं । वे सब आत्मा ज्ञानमय हैं । आत्मामेंसे एक ज्ञानवरूप न मानें तो आत्मा का सद्गुरु नहीं रह सकता । ज्ञानसे ही रचा हुआ यह आत्मा है जिसे वैज्ञानिक चेतन कहते हैं वह चेतन क्या है ? जब ज्ञान विकल्पमें नहीं रहता, रागद्वेष कल्पनाओंमें नहीं रहता उस समय ज्ञानकी ऐसी विशुद्ध दशा रहती है कि जहाँ एक केवल ज्ञातु व रहता है, केवल ज्ञानहारणना रहता है । उस केवल ज्ञानहारणकी स्थितिमें विकल्प नहीं है, सङ्कल्प नहीं है रागविरोध नहीं है, इससे वे यह नहीं पकड़ पाते कि यहाँ ज्ञान भी हो रहा है क्योंकि लौकिक जन ज्ञान इस हीको माना करते कि जहाँ विकल्प उठे, विचार चले उसे ज्ञान समझते हैं, पर यह तो ज्ञान है ही नहीं । यह तो ज्ञानमें उपाधिकृत दोष आया है ।

उदाहरणपूर्वक आत्मामें सर्वदा ज्ञानके सद्गुरुका प्रतिपादन—जैसे दो चीजें मिलकर कोई एक छप बदल लें, उस बदली हुई हालतमें भी सूक्ष्म दृष्टिसे दो

चीजें हैं। अगर वे रूप बदल लें तो न उसका शुद्ध रूप रहा न दूषरेका शुद्ध रूप रहा, उसने अपनी बदल कर ली। इसी तरह ज्ञानमें रागका सम्पर्क युड़ गया। और किं आत्मा एक ही है और तन्मय दोनों ही हैं तो ज्ञान और राग इनके सम्पर्कसे एक कल्पना बन बैठी। उस कल्पनामें सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करें तो वहाँ भी बड़ा भेदज्ञान कर सकते हैं कि इसमें इतना मात्रिन्य अंश तो राग ना है और यह जो ज्ञानका शुद्ध अंश है वह ज्ञानका है लेकिन सूक्ष्म दृष्टिपर कौन छान देता है। लोग सीधा ही यह ज्ञान जाते हैं कि ये कल्पनायें, ये विकल्प, ये घुड़दौड़, यह सब ज्ञानका ही काम है पर ज्ञानका शुद्ध काम केवल ज्ञान है। जैसे आँखोंका काम देखना है और आँखोंपर यदि लाल चश्मा लगा दिया जाय तो वे वस्तुयें लाल दिखती हैं। तो लाल निरखना यह आँखोंका शुद्ध काम नहीं है। उसमें भी केवल निरखना आँखिका काम है। जो ललाभी रूप निरखा गया उसका कारण चश्माका सम्पर्क है। अथवा कोई हरा रङ्गीन वल्व लगा दिया तो कमरेमें हरा हरा प्रकाश लगा गया। अब उस प्रकाशके बोच यह निरर्थ करें कि प्रकाश किसका नाम है। जो यह हरा-हरा दिलता है यह तो रङ्ग है प्रकाश नहीं है। तो प्रकाश कोई ऐसी अनिवंचनीय चीज है कि हरे रङ्गके होनेपर भी वहाँ जो कुछ उद्योग है बस उद्योगमात्र प्रकाशका काम है, हरा होना प्रकाशका काम नहीं है। इसी तरह ज्ञान अंश होना यह तो ज्ञानका काम है अब उसमें राग न्येह विकल्प आदिक जो स्थूल रूप हो रहे हैं, ये ज्ञानके काम नहीं हैं। तो जब ज्ञान अग्रने स्थूलरूप को छोड़ देता है और एक विशुद्ध ज्ञान अंशमें रहता है उस स्थितिमें और किं विकल्प नहीं रहे सो यह ही मान लिया विशेषियोंने कि आत्मामें ज्ञान है ही नहीं। आत्मामें तो मात्र चैतन्य है। लेकिन ज्ञान दर्शनके अतिरिक्त चैतन्यस्वरूप क्या ?

दर्शनज्ञानरूपताके बिना चैतन्यस्वरूपकी असिद्धी— चैतन्यसे आत्मा चेतता है तो चेतता है यह सामान्य विशेषात्मक है। कुछ भी बात हो, कोई भी पदार्थ हो वह सामान्य विशेषात्मक होता है। तो चेतना भी सामान्य विशेषात्मक हुई तो उसमें जो सामान्य चेतना है उसका नाम दर्शन है, जो विशेष चेतना है उसका नाम ज्ञान है। ज्ञानको छोड़ कर आत्मा अपनी सत्ता नहीं रख सकता है, अतएव आत्मा किंगी भी परिस्थितिमें हो, चाहे मूर्छित दशामें हो चाहे सोई हुई अवश्यमें हो अथवा पागल अवस्थामें हो, सभी अवस्थामें आत्मा ज्ञानमहित ही रहता है आत्मा ज्ञानारहित नहीं होता। इससे यह मानो कि विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न होनेका नाम है आत्माका मोक्ष। न कि ज्ञानके विनाशका नाम है आत्माका मोक्ष। तथा यह भी मानो कि विशुद्ध ज्ञान होनेपर आगे विशुद्धज्ञान विशुद्धज्ञान ही चलता रहता है और उन समस्त विशुद्ध ज्ञानों का आधारभूत एक आत्मा है। मोक्ष किसका हो ? एक आत्माका। किससे मोक्ष हो ? अशुद्ध ज्ञानसे। जो ज्ञान सराग चलरहा था तो उन रागोंसे मोक्ष होना है। ज्ञान तो अब वह शुद्ध हो गया है तो ज्ञानके शुद्ध होते ही आनन्द भी शुद्ध होता है, शक्ति भी शुद्ध रहती है और दर्शन भी शुद्ध रहता है तो अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और

अनन्त आनन्द, इस चतुर्ष्टयस्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है इसमें रंच भी संदेह की गुञ्जादश नहीं है ।

पाश्वर्वस्थ पुरुषद्वारा सुप्तपुरुषके ज्ञानाभावकी असाधना—प्रकरण यह है कि शङ्खाकार मान रहा है कि सोये हुए मनुष्यमें ज्ञान नहीं रह । और यथार्थता यह है कि आत्मा तो अविनाशी है, वह तो सदाकाल है । सोये हुए मनुष्यमें भी ज्ञान है और यह मनुष्य मरण कर जाय, अगले भवमें जाय तब भी ज्ञान रहेगा, इसके पहिले भवमें भी ज्ञान था । आत्माका अविनाशाती धर्म है ज्ञान । ज्ञान न हो तब आत्माका कुछ स्वरूप ही नहीं है । जो लोग मानते हैं कि सोई हुई अवस्थामें ज्ञान नहीं रहता उनसे दीन विकल्प किये गए थे, जिनमें दो विकल्पोंका तो खण्डन कर दिया । अब पूछते हैं कि जो सोया हुआ है उसमें ज्ञान नहीं है इस बातको जानने वाले वया पासमें बैठे हुए कोई मनुष्य होते हैं ? सोये हए मनुष्यमें ज्ञानका अभाव है, इसे सोया हुआ तो ज्ञान न सकेगा । उसके दोनों विकल्प तो निराकृत कर दिये । अब पूछ रहे हैं कि क्या पासमें बैठा हुआ कोई मनुष्य सोये हुएके उस ज्ञानके अभावको जानते हैं, यह भी बात युक्त नहीं है । क्योंकि सोये हुएमें ज्ञान नहीं है, इस बातको सिद्ध करने वाला तुम्हारे पास कोई हेतु नहीं है । हेतुप्रसिद्धकारणानुश्लिष्ठि, स्वभावानुपलिष्ठि, व्यापकानुलिष्ठि या विरुद्धविधि ये चार होते हैं अर्थात् ज्ञानभावका कारण न दीखे, स्वभाव नजर न आये तो कह सकते कि ज्ञान नहीं है । अथवा ज्ञानके विरुद्ध कोई बात समझमें आये तो कह सकते कि ज्ञान नहीं है, पर ये कोई साधन ध्यान में नहीं आ रहे इस कारण पासमें बैठे हुए मनुष्य भी सोये हुएके ज्ञानके अभावको जान ले यह सम्भव नहीं है ।

सुप्त पुरुषके ज्ञानके सङ्खावाकी सिद्धि—शङ्खाकार कहता है—तो यों तो सोये हुएमें ज्ञान है, इसको सिद्ध करने वाला भी हेतु नहीं है । कैसे सिद्ध करोगे कि सोये हुए पुरुषमें ज्ञान है ? उत्तर देते हैं कि देखो उस पुरुषमें इवासोच्छ्वास विदित हो ही रहा है । बल्कि जगे हुए मनुष्यसे भी अविकृत उसका इवास निकलता है । सोये हुए मनुष्यके नाकसे बहुत तेज इवास निकलती है और कितने ही लोग तो धुर्दृष्टके साथ इवास लिया करते हैं । एक लक्षण तो यह जाना गया । दूसरा लक्षण यह जाना गया कि शरीर भरम हैं । तीसरेमें श्राकार विशेष समझा गया । ऐसे और भी अनेक लक्षण हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि इसमें ज्ञान है, क्योंकि ज्ञान न हो तो ये बातें नहीं आ सकती हैं । और ज्ञान होता है स्वसंविदित । ज्ञान अपने आपको जानता रहता है । तो स्वसम्बेदी ज्ञानके अविनाशाती रूपसे निश्चय किया गया, यह लक्षण दिख रहा है इससे जाना जाता है कि सोये हुए पुरुषमें भी ज्ञान है । देखिये ! जगने वाले जो और लोग हैं इनमें ज्ञान है यह तुम कैसे जानते हो ? इसी तरह तो जानते हैं ना कि इन जानने व ले पुरुषोंमें भी इवासोच्छ्वास निकल रहा है । इनके

शरीरमें गर्भी है, यह चलता फिरता भी है। इसमें आकार विशेष भी है। इससे ही तो समझते हैं कि जगने वाले इन दूसरे लोगोंमें ज्ञान है। तो जो लक्षण दूसरे जगने वालोंमें पाये जाते हैं ज्ञानको सिद्ध करनेके लिये वे ही लक्षण सोये हुएमें भी हैं।

सुप्त और मृतके अन्तरसे सुप्तमें ज्ञानकी सिद्धि—कोई मुर्दा है जिसमें सोविक्षिक्य गया, जिस लोग निःशक्त होकर जला देते हैं, सभी लोग समझते हैं कि इसमें ज्ञान नहीं रहा, वैशेषिक श्वासोच्छ्वास नहीं है, पर सोये हुएमें तो इस सोच्छ्वास चल रहा है, मुद्दके शरीरकी गर्भी बन्द है, अब उष्णता नहीं रही, पर सोये हुए मनुष्यके शरीरमें उष्णता है ना, और मुर्दाका आकार कान्तिहीन होना है, मगर सोये हुए मनुष्यके चेहरा कान्तिहीन नहीं नजर आता। तो इन सब बातोंसे ज्ञान जाते हैं कि सोये हुए मनुष्यमें भी ज्ञान है। ज्ञान कहो, ज्ञान कहो एक ही बात है। ज्ञानका विगड़कर ज्ञान रूप बन गया, जैसे कोई कहता है कि अभी तो इसमें ज्ञान है उपका अर्थ यह है कि अभी तो इसमें ज्ञान है। ज्ञान विना आत्मा नहीं रहता। तो सोये हुए मनुष्यमें खूँकि सभी लोग कहते हैं कि ज्ञान है, उसीका अर्थ है कि ज्ञान है। यहाँ लोग कुछ जीवोंको ज्ञानवर कहते हैं। ज्ञानवरका अर्थ असली वया है? ज्ञानवर! जो ज्ञानमें ऊँचा हो, ज्ञानमें श्रेष्ठ हो उसका नाम है ज्ञानवर। प्रीर, ज्ञानवरका बिगड़ कर रूप बन गया ज्ञानवर। अगर किसीका कहा जाय कि आपनी विद्वत्ताका क्या कहना! आप तो ज्ञानवर हैं तो उसका अर्थ हुग्रा कि ज्ञानमें श्रेष्ठ हैं। लेकिन कोई पुरुष ज्ञानमें तो श्रेष्ठ हो नहीं, मूर्ख हो और उसे कहा जाय ज्ञानवर, तो वह तो गाली मानेगा। तो इसी तरह ज्ञानवर शब्द गानीके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। ज्ञान कहो ज्ञान कहो एक ही बात है। तो जैसे जागृत दशामें दूसरे पुरुषकी ज्ञान वृत्तिका प्रदाज हम इवास, उष्णता, आकारविशेषसे जाना करते हैं उसी प्रकार सोये हुएका भी ज्ञान जान लिया जाता है।

शङ्काकारद्वारा प्राणद्वैविद्यका प्रस्ताव—अब यहाँ शङ्काकार क्षणिकवादी कहता है कि भाई! प्राण आदिक दो प्रकारके होते हैं—ए। तो चेतनाप्रभव प्राण और एक प्राणादिप्रभव प्राण अर्थात् जागृत अवस्थामें जो प्राण है वह तो चैतन्यसे पैदा होता है और सोये हुएमें जो प्राण है वह प्राणोंसे पैदा होता है। शङ्काकार इस तरह दो भेद डाल रहा है। इसमें कुछ अदाजा उसने यों लगाया कि खूँके सोये हुए मनुष्यमें ज्ञानकी सावधानी नहीं है तो पहिने तो जागृत अवस्थामें प्राण थे, चैतन्यसे उत्पन्न हुए उन्हीं प्राणोंसे प्राण प्राण होते जा रहे हैं। चैतन्यसे तो प्राण उत्पन्न नहीं हो रहे हैं, ऐसा अदाज करके शङ्काकार कह रहा है कि जागृत अवस्थामें चैतन्यका अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि वहाँ जो ये प्राण उत्पन्न होते हैं श्वासोच्छ्वास आदिक उत्पन्न होते हैं ये चेतनसे उत्पन्न होते हैं। वहाँ प्राणप्रभव प्राण नहीं है। प्राणोंसे प्राण उत्पन्न नहीं हो रहे हैं जगती अवस्थामें। सोई हुई अवस्थामें जो प्राण

हैं वे प्राणोंसे पैदा हुए, चैतन्यसे पैदा नहीं हुए। शङ्काकार कह रहा है—जैसे एक मायाघट होता है जिसे गोपालघट भी बोलते हैं, जिससे धुवां तो निकलता है पर आग नहीं रहती। ऐसा जादूगरीका घट, गोपालघट कि जहाँ धुवां निकल रहा है, पर आग नहीं है, तो उस गोपालघटमें धुवांसे धुवां उत्पन्न होता है और रसोईघरमें जो धुवां होता है वह अग्निसे उत्पन्न होता है। तो जैसे हो तरहके धुवां हुए—धूमसे उत्पन्न हुआ धुवां और अग्निसे उत्पन्न हुआ धुवां। अथवा मान लो किसी मटकेमें खूब गहरा धुवां भरदें, भरकर उसका मूँह बन्द करदें कि निकल न सके उसे ले जावें कहीं बाहरी जगह। वहाँ ढक्कन निकालकर देखा तो धुवां निकल रहा है, पर अग्नि नहीं है। क्योंकि वे धूम धूमप्रभव हैं। तो धूमप्रभव धुवांसे अग्निका अनुमान नहीं किया जा सकता। हीं अग्निप्रभव धुवांसे अग्निका अनुमान किया जा सकता है। तो इसी तरह सोई हुई अवस्थामें प्राणादिप्रभव प्राण हैं। प्राणोंसे प्राण होते नजर आ रहे हैं और जगृत अवस्थामें चैतन्यप्रभव प्राण हैं। चैतन्यसे प्राणोंकी उत्पत्ति है, तो जागृत अवस्थामें जो प्राण है उससे तो चैतन्यका अनुमान होता है पर सोई हुई अवस्थाका जो प्राण है उससे चैतन्यका अनुमान नहीं होता।

समस्त प्राणोंमें चैतन्यप्रभवताकी सिद्धि—शङ्काकार यह बात इस चर्चा पर कह रहे हैं जो यह कहा था कि जैसे इवासोच्छ्वास शरीरकी उष्णता, आकार चिशेष जागृत जवस्थामें नजर आता है और उस अवस्थासे हम जगते पुरुषमें ज्ञान है, यह अनुमान करते हैं इसी तरह इवास देखकर शरीरकी गर्भ जानकर उसमें ज्ञान है, यह अनुमान करते हैं इसमें दोष देनेके लिए यह कह रहे हैं कि जगते पुरुषके प्राण और किस्मके हीं सोये हुए पुरुषके प्राण और किस्मके हीं। प्राणोंसे उत्पन्न हुए प्राणोंसे चैतन्यका अनुमान नहीं होता है। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना तुम्हारा अयुक्त है क्योंकि सुषुप्त पुरुषके और जागृत पुरुषके प्राण आदिकमें अन्तर कुछ नजर नहीं आता, जैसे सोया हुआ पुरुष इवास ले रहा है, जो रहा है इसी तरह जगता हुआ पुरुष भी इवास ले रहा है। यदि दोनोंकी इवासोंमें फर्क होता तो फिर यह सन्देह किसी किसीमें क्यों होता कि यह सोया हुआ है या जगता हुआ है? अथवा कोई युरुष दूसरेको ठगने के लिए जान-बूझकर सोया हुआसा पड़ जाय तो उमके प्रति भी लोग सन्देह करते हैं ना, देखें तो सही, यह बहुत बहाना बनाया करता है, यह सो रहा है कि जग रहा है? यह सन्देह क्यों होता है? इसी कारण कि जैसे इवासोच्छ्वास जगतेमें चलता है ऐसे ही सोयेमें भी चलता है। उन प्राणोंमें कोई अन्तर समझमें नहीं आता। सोये हुएके भी प्राण चैतन्यसे उत्पन्न होते हैं, प्राणोंसे प्राण उत्पन्न नहीं होते। चाहे जगता हो या सोया हो, जहाँ इवासोच्छ्वास उत्पन्न हो रहा है चेतनके सम्बन्धसे हो रहा है। यदि सोये हुएका वह प्राण चैतनसे उत्पन्न न हो तो दूसरेको ठगनेके अभिप्रायसे जगता हुआ पुरुष सोयेका कष्ट करे तो उसमें फिर सोये हुए पुरुष जैसी मुद्दामें न नजर आना चाहिए। क्योंकि वैसे अग्निसे जो धुवां उत्पन्न होता है उस प्रकारका धुवां सैकड़ों

प्रयत्न कोई करले, पर अन्य चीज़में उत्पन्न नहीं किया जा सकता और उस मायामयी घटसे जैसे धुवां उत्पन्न होता है, उस धुवांसे अग्निसे उत्पन्न होने वाले धुवांका साम्य नहीं किया जा सकता। बहुत ठड़के दिनोंमें तालाबोंमें बड़ी तेज भाष निकलती है, और दूरसे देखने वाले पुरुष जानते हैं कि यह बड़ा धुवां उठ रहा है। पर उस धूममें और अग्निसे उत्पन्न होने वाली धूममें फिर भी कुछ फर्क न नहीं आता है। या जाइके दिनोंमें खुदके ही मुखसे भाष निकलती है, तो क्या कोई यह स देह करने लगेगा कि और इसके दिलमें तो आग लग गयी ! देखो ना धुवां निकल रहा है। तो वह धूम जो अग्निसे निहलता है ऐसा धूम अन्य बातोंसे संकड़ों उपाय करें तो भी निकल नहीं सकता। और यहाँ तो जैसे सोये हुए पुरुषोंमें प्राण नजर आ रहे, वैसे ही जगते हुएमें नजर आ रहे, इस कारण इवासोच्छ्वाममें यह भेद नहीं डाल सकते कि यह इवास तो निकली है चैतन्यसे और यह इवास निकली है प्राणोंसे। समस्त इवास चेतना के सम्पर्कसे ही निकलती है।

प्राणोंमें और भावोंमें समानता असमानताकी प्रतीतिसिद्धता शंकाकार जो इन दो प्राणोंमें अन्तर डाल रहा है जगते हुएके प्राणोंको बताता है कि चेतन से उत्पन्न हुआ और सोये हुएके प्राणोंने बताता है कि प्राणोंसे उत्पन्न हुआ, तो जो चेतन और अचेतनसे उत्पन्न हुए प्राणोंका भेदकर रहा है वह सराग चेष्टा और वीतराग पुरुष भी वीतरागकी तरह अरंगी चेष्टा कर सकता है और वीतराग भी सरागतृ चेष्टा कर सकते हैं सो यह निश्चय अशक्य है कि यह सराग है और यह वीतराग है। जब यह वीतराग है या सराग है यह भेद नहीं किया जा सकता तब इन प्राणोंमें भी भेद न करना चाहिये। भले ही जैसे विहार मुनिजी करते हैं तो विहार अरहंत भगवान भी करते हैं। सकल परमात्मा भी करते हैं। कोई चारणकृदिवारी मुनि हो वह भी आकाशमें कदम उठाकर विहार करता है। तो वह मुनि आकाशमें कदम उठाकर विहार भले ही करे किर भी यह समझमें आता ही है कि यह वीतराग देव है और यह अभी मुनि है। उनका निश्चय कैसे नहीं होता ? उद्देश वै बात सुनलो। छवनि तो सराग मुनिके भी निकलती है और सकल परमात्मा अरहंत देवकी भी निकलती है पर छवनि में अन्तर तो नजर आता है। सरागी मुनियोंकी छवनि अरहंत प्रभुकी छवनिकी तरह नहीं होती है। अरहंत प्रभुकी छवनि दिव्यछवनि है। यहाँ मनुष्य छवनि कहते हैं, वहाँ तो भेद भी है, यहाँ प्राणोंमें भेद नहीं है यह निश्चय करना कि सोये हुएमें सब अवस्थाओंमें आत्मा है तो सदा ज्ञानमय रहता है। यह नहीं है कि सोये हुएमें आत्मा ज्ञान रहित हो गया और जगते हुएमें आत्मा ज्ञानशहित हो गया। जो ज्ञानी है वह सदा ज्ञानी है। जिस वस्तुमें ज्ञान नहीं है उसमें कभी भी ज्ञान नहीं आ सकता।

जीवके कायोंकी जीवमें प्रसिद्धि - लोकमें दो प्रकराके पदार्थ हैं—एक जीव,

एक अजीव । अब निर्णय कर लीजिये । सभी लोग जानते हैं—कुत्तेको यदि कोई लाठी मारता हो तो दूसरे लोग उसे डाटते हैं क्यों बेरहम बनता है, पर भीटमें कोई लाठी मार रहा हो तो कोई पुरुष उसे नहीं डाटता कि अरे क्यों भीटको घीट रहा है ? क्यों बेरहम बन रहा है ? सबके ज्ञानमें यह बात है कि भीटके ज्ञान नहीं है और इन कुत्ता बिल्ली आदिके ज्ञान है । तो दो प्रकारके पदार्थ हैं—जीव और अजीव । जो जीवमें गुण हैं वे कभी अजीवमें नहीं आ सकते, जो अजीवमें गुण हैं वे कभी जीवमें नहीं आ सकते । ये संभारे जीव अनादिकालसे अजीवके साथ ऐसी घनिष्ठतामें जड़े हुए हैं, बढ़ बने हैं, एक क्षेत्रावगाही हो रहे हैं, देखो ना शरीर चलेगा तो अत्माको चलना पड़ेगा और आत्मा चलेगा तो शरीरको भी चलना पड़ेगा । इन नोदोंका परम्परमें कैता घनिष्ठ सम्बन्ध है । बौधा हुआ है । कर्मसे जकड़ा हुआ है, इतना तीव्र जकड़ा हुआ होनेपर भी जीवके गुण कभी अजीवमें नहीं आ सकते और अजीवके गुण कभी जीवमें से भी आ सकते । अब जरा दो जीवोंका भी सुनबला करो । पिता पुत्र हैं, पति पत्नि हैं, बड़े घनिष्ठ दो मित्र हैं, भाई—भाई हैं किनना भी प्रस हो, पर एक जीवके गुण, एक जीवके परिणामन दूसरे जीवमें कभी नहीं पहुंचते । दूसरेके परिणामन किती अन्य दूसरमें कभी नहीं पहुंचते । ये संसारके सभी प्राणी अपनी—प्रत्यनी कषायोंके अनुपार अपनी—अपनी चेष्टा करते हैं जो चेष्टा अनुकूल लग जाती है तो हम उससे प्रेम करते हैं, यह मेरा बड़ा प्रेमी है जिसकी चेष्टा प्रतिकून हो जाती है उससे हम द्वेष करते हैं यह मेरा बड़ा विरोधी है । लेकिन जगतमें अनन्त जीव हैं, सबकी सत्ता न्यारी न्यारी है । कोई भी जीव अपने प्रदेशसे बाहर अपनी कुछ भी चेष्टा कर नहीं सकता । किर किउको हम मित्र कहें, किसको हम विरोधी कहें । अरे कोई मुझसे प्रेम नहीं करता ।

विकल्पों द्वारा परको आत्मीय बनानेकी प्रज्ञक्यता—सभी प्राणी अपने अपने विकल्पोंके अनुपार अपने आपकी चेष्टा करते हैं, भाव बनाते हैं । तो एक जीव का गुण, एक जीवका परिणामन दूसरे जीवमें भी नहीं पहुंचता । प्रत्येक पदार्थ अपने सत्त्वके कारण स्वतंत्र है और देखिये जिस निमित्त निमित्तिरु सम्बन्धमें वह शीघ्रतासे समझ लिया जाता है कि अपनिने पानीको गरम किया । शरीरने आत्माको चला दिया इस मनुष्यने असुक कांपी किताब बना दिया । वहाँ पर भी कोई द्वय किसी दूसरे द्वय में किया नहीं कर रहा है । एक पदार्थ दूसरे पदार्थमें अपना परिणामन डाल दे यह त्रिकालमें भी नहीं हो सकता । प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे सत है और परलूपसे असत है । वह स्वरूप क्या है ? द्वय, सेत्र, काल, भाव । तो जव सब पदार्थ अपने ही गुणों के स्वामी हैं, अपने ही परिणामनके स्वामी हैं तो जरा अपने आपमें भी तो अनुभव करता चाहिये । जगतमें कोई किसीका सहाय नहीं होता । क्या आपके दादा बाबा पिता जो जिनके नहीं रहे उनके प्यार पर तो कुछ ध्यान दीजिये । कितना आपपर घनिष्ठ प्यारथा । आपके बाबा आपको गोदमें लिए रहा करते थे । लड़कोंसे भी विशेष व्यार पोताओंसे होता है, और तभी सरकारी भी नियम है कि पिताकी जायदादका अधि-

कारी लड़का तो नहीं है, मगर उस जायदादका अधिकारी पोता है। उसे कानूनन हक है। और पहिले जमानेमें जो बाबाका नाम होतो था करीब करीब वही नाम पोतेका रखा जाता था। आप पुराणोंमें पढ़ेंगे तो कुछ जगह ऐसे ही नाम रखे पायेंगे। तो इतना धनिष्ठ स्नेह करते हैं तो करें, लेकिन सम्बन्ध रंचमात्र नहीं है। अपने आपके आत्मापर हृष्टि डालें वही एक मात्र सहाय है। तो जिन दादा, बाबा, आदिका मुझपर बड़ा प्यार था वे क्या अपना प्यार निभा सके? वे अब हैं क्या? उनसे कुछ मिल जुल रहा है क्या? उन्होंने भी क्या किया? अपना बिंगाड़ किया। मेरेको लक्ष्यमें ले कर अपना मोह बढ़ाया और जीवन सोया। और मरण करके जिस गतिमें पहुँचे हों वहाँ वे अपने कर्मनुसार दुःख भोग रहे हैं। उन्होंने मेरा क्या किया? उनको मुझसे क्या लाभ मिला? उनसे मुझे क्या लाभ मिला? सभी जीवोंकी चेष्टा अपने—अपने क्षण भावोंसे होती है।

प्रभुके कर्तव्योंके आदरमें ही प्रभुभक्तिकी यथार्थता— हम यहाँ प्रभु पूजा करने आते हैं, दर्शन करने आते हैं, तो दर्शन हम जिनके करते हैं, जिनके आगे शीश झुकाते हैं, नमस्कार करते हैं, आदर देते हैं, उन्होंने जो काम किया उस काममें भी आपका आदर है कि नहीं? यदि उनके काममें आदर नहीं है तो आपका यह नमस्कार सब झूठा है, थोथा है। सूत्र गम्भीरतासे सोचो प्रभुने क्या कार्य किया था? वस्तु स्वरूपका ज्ञान किया था। भेद विज्ञान करके पर पदार्थोंसे उपेक्षा करके, मोह तोड़कर निर्भोह अविकार ज्ञानम्बभावमें अपना उपयोग लगया था और सबसे फिर हटकर इस ही ज्ञानस्वभावमें लीन होकर उन्होंने यह तरमपद पाया। उन्होंने जो काम किया उसमें आदर नहीं है तो फिर दर्शन क्या? चाहे हम वह काम न कर सकें, गृहस्थ हैं। दस जगह चित्त उलझता है। अनेक चिन्ता शल्य रहा करती हैं, हम चाहे उस काममें सफल नहीं हो पायें, लेकिन यदि आदर भी नहीं है जो प्रभुने कार्य किया, जो मोक्ष विविकी उसमें यदि आदर नहीं है, हम उसे आदेय नहीं मानते। मुझे भी यह काम करना चाहिए, जब मैं कर सकूँगा तभीमें संकटोंसे छुटकारा पाऊँगा यदि ऐसा परिणाम ऐसी श्रद्धा नहीं होती है तो हमने क्या सिर झुकाया? क्या माना? तब अपनी जिम्मेदारी अपने आपपर जानकर अपना विचार तो चलना ही जाहिये कि जिससे हमारा ज्ञान विशुद्ध बने और दुर्लभ यह मानव जीवन हमारा सफल हो। देखिये तो सही समारमें कीड़ा मकोड़ा टृक्ष पौधे और पशु पक्षी ये सारे जानवर कितनी एक तुच्छ गतिमें हैं इनकी दयनीय अवस्था है, उन सबको पार करके हम आप ऐसे मनुष्य हुए हैं जहाँ सत्त्वरमंका समागम मिला है। ऐसे दुर्लभ समागमको पाकर हम यदि अपने जीवनकी सफल करने का परिणामन बनायें, घर्मपालन न करें तो जीवन तो गुजर जायगा, समझिये कि अमूल्य श्रवणसरको पाकर हमने यों ही विषयोंमें गवां दिया। इससे जन्म मरणकी परम्परा हमारी लम्बी होती जायगी। अतः चेतें, मोहमें कुछ नहीं रखा है, निर्भोह ज्ञानकी बात सीखें और आत्म घर्ममें रहकर अपने जीवनको सफल बनायें।

**प्राणद्वैविद्यकी चर्चाका [प्रकरण—यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि सोये हुए पुरुषमें ज्ञान रहता है या नहीं ? शङ्खाकारने कहा है कि सोये हुए पुरुषमें ज्ञान नहीं रहता है । तब उनसे पूछा गया कि ज्ञान नहीं रहता है तो सोये हुए पुरुष की श्वास निकलना, शरीरकी गर्भी रहना यह किस बलपर है ? ज्ञानरहित होजाना इसका अर्थ है कि ज्ञान नहीं रहा । जब तक ज्ञान है तब तक ज्ञान है । तो जब ज्ञान नहीं माना सोये हुए आदमीमें तो श्वासोच्चवास कैसे निकल रहा है ? इसके उत्तरमें शङ्ख कारने यह कहा कि भाई ! प्राण दो तरहके होते हैं—एक तो चैतन्यसे उत्पन्न होने वाले प्राण और एक प्राणसे उत्पन्न होने वाले प्राण । तो सोये हुए में चैतन्य प्रभव प्राण नहीं है किन्तु प्राणप्रभव प्राण है । इस सम्बन्धमें चर्चा चलनेपर यह सिद्ध हुआ कि सोये हुए पुरुषमें भी चैतन्यप्रभव प्राण है । जैसे प्राण जगते हुए पुरुषके हैं वैसे ही प्राण सोते हुए पुरुषके हैं । उस श्वासोच्चवासमें कुछ अन्तर नहीं आता । इसके विरोधमें शङ्खाकारने यह कहा था कि जैसे एक मायाघट होता है, मायामी घड़ा, जिसे गोपालघट कहते हैं उसमेंसे धुर्वां निकलता दिलाई देता है, पर अग्नि नहीं होती । तो इसका हृषात्म देकर शङ्खाकारने यह कहा कि जैसे धुर्वा अग्निसे भी उत्पन्न होता है और धुर्वासे भी उत्पन्न होता है तो ऐसे ही श्वासोच्चवास चैतन्यसे भी उत्पन्न होता है और प्राणसे भी उत्पन्न होता है । तो इसके निराकरणमें बात कही गई कि जैसा धुर्वां मायाघटसे होता और जैसा धुर्वा अग्निसे होता, इसमें अन्तर है ? और परख कर ली जाती है कि यह अग्निसे उत्पन्न हुआ है या मायाघटसे । तो जिस तरह यह निर्णय कर लिया जाता है कि यह धुर्वां आगका है या धुर्वा का है । इस तरहका निर्णय कोई भी पुरुष जगते और सोतेके प्राणमें नहीं कर सकता । क्योंकि चैतन्य तो किसीको दिलाई नहीं देता । जगते पुरुषका भी श्वासोच्चवास चल रहा है उससे यह अनुमान करते कि इसमें चैतन्य है, ज्ञान है । तो ऐसे ही सोये पुरुषमें जो श्वासोच्चवास निकल रहा है उसमें भी अनुमान किया जाना चाहिये कि इसमें चैतन्य है और ज्ञान है ।**

**प्राणोंमें चैतन्यप्रभवता और प्राणप्रभवताके भेदका अनिर्णय—** देखिये ! धूममें जब सन्देह हो जाय कि यह धुर्वा अग्निका है या मायाघटका है तो उसका सदैऽ आंबोंसे देखकर दूर कर लिया जाता है । मायाघटमें देखा आग थी नहीं सो जाना गया कि यह धुर्वा आगका नहीं । या तालाबमें तेज धूमसा निकलता है शीत ऋतुमें, उम समय सदैऽ हो जाय कि यह जो धुर्वासा निकल रहा है या आगके बिना, तो उस सन्देहको देखकर दूर किया जा सकता है । लेकिन यहाँ यह सन्देह डालना कि जगते पुरुषमें जो श्वास निकल रहा है वह तो चैतन्यसे निकल रहा है और सोते में जो श्वास निकल रहा है वह चैतन्यसे नहीं किन्तु प्राणसे निकल रहा है । तो उसमें सदैऽ होना कि चैतन्यसे निकला या प्राणसे, इसको दूर करनेका कोई साधन नहीं । प्राणोंमें यह सदैऽ कहाँसे आप दूर करेंगे कि यह बादके चैतन्यसे उत्पन्न हुआ

प्राण है या पूर्व भवसे आया हुआ प्राण है । जब दूसरा चैतन्य दिखता ही नहीं है तो किर किसीने शाल ही क्यों बनाया ? किर इन क्षणिकवादियोंने सुन्तमें चैतन्यका ज्ञान अभाव मानने वाले लोगोंने, परं चेतनका जब दर्शन ही नहीं हो सकता, तो फिर शास्त्र क्यों बनाया ? किसीको समझानेके लिए उन्देह में भी क्यों निया जाता है ? सन्देहसे शास्त्र बनाया तो फिर चाहुंवाक या नास्तिक लोगोंमें संतमें क्या विरोध रहा ? इससे यह मानना चाहिये कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है । यह आत्मा जिस भवमें रहता है उस भवमें उस भवके आरम्भसे लेकर भरणे काल तक उन्नतर ज्ञान बना रहता है । चाहे वह सो रहा हो, मूर्छित हो, पागल हो, सब स्थितियोंमें आत्मामें ज्ञान रहता है और उस ही भवकी बजत क्या, उस भवको छोड़कर अगले भवमें जायगा तो वहाँ परं भी इसमें ज्ञान बना रहेगा । ज्ञानसे शृण्य आत्मा कभी भी नहीं होता ।

जाग्रत अथवा प्रबुद्ध चैतन्यसे सुन्तप्राणोंकी उत्पत्ति सिद्धि और चैतन्यप्रभवताकी सिद्धि ये शंकाकार यहाँ यह मान रहे हैं कि सोई हुई हालतमें ज्ञान नहीं है, और जो श्वासोच्चवास निकल रहा है वह चैतन्यसे नहीं किन्तु प्राणोंसे निकल रहा है । तो सोये हुए पुरुषके प्रारम्भमें जो पहिले प्राण उत्पन्न हुआ है बता सकते हो कि यह किससे उत्पन्न हुआ है । क्या पहिले जो जग रहा था उस समय जो जो ज्ञान ही रहा था उस प्राणसे यह सोये हुएका प्राण उत्पन्न हुआ है ? यह बात तो गलत है क्योंकि एक विज्ञानसे अनन्तरका प्राण आदिक उत्पन्न ही जाय या जब सोकर जग गया उस जगे हुयेके ज्ञानका कारण बन जाय सो असम्भव बात है । जंकाकार यहाँ मानता है कि जब यह जीव जग रहा था तब तो इसमें ज्ञान था और अब जो सो गया है तो इसके ज्ञान नहीं रहा । अब सोकरके जो जगेगा तो वहाँ ज्ञान पैदा हो जायगा । तो सो करके जगे, वहाँ जो ज्ञान पैदा हुआ है वह पहिले जग रहा था तबके ज्ञानसे पैदा हुआ था, तो यह बात कैसे मानी जा सकती है ? एक सामग्रीसे क्रपसे होने वाले दो कार्य उत्पन्न नहीं हो सकते । अगर एक पदार्थसे दो कार्य उत्पन्न होने लगे तो फिर ये क्षणिकवादी लोग क्यों नित्य सिद्धान्तका विरोध करते ? नित्य पदार्थ जो एकरूप हैं उनसे यह मानना चाहिए कि सोये हुएमें जो प्राण उत्पन्न हो रहे हैं तो सोये हुए समयमें भी ज्ञान बराबर है और उस ज्ञानके कारण ये प्राण प्रकट हो रहे हैं, श्वासोच्चवास प्रकट होरहा है । सोये हुएमें ज्ञानके अभावकी सिद्धि नहीं करते ।

स्वापसुखसंवेदन होनेसे सुन्त प्राणोंके चैतन्यप्रभवत्वकी सिद्धि— और भी देखो ! सोये हुएके समयमें जो सुख होता है उसका सम्बेदन उस सोये हुए का बना होता है । कदाचित् कोई स्वप्न दुःखभरा आ जाव सोये हुए मनुष्यको, कहीं जङ्गलमें फौस गए, किसी मिहने आक्रमण कर दिया, या सांप निकल आया, कुछ ऐसी आपत्तिकी बात दीखनेमें आ जाय तो वह घबराकर जग जाता है ना ? तो उसे सोये हुएकी स्थितिमें दुःख हुआ है ना ? उस दुःखके कारण ही तो घबड़ाया है । तो

दुःख वहां होता है जहां ज्ञान है । सो करके कोई मनुष्य उठे तो उठनेके बाद वह यह स्मरण करता है ना कि मैं आज बड़े सुखसे सोया ! सभी लोगोंकी बात है । तो सोयेमें सुखका अनुभव हुआ था तभी तो जगनेपर रुपाल कर रहा है । जिस चौजका अनुभव नहीं हुआ उस चौजका स्मरण तो हुआ ही नहीं करता । यह भी बात नहीं कह सकते कि सोये हुएमें अगर सुखका अनुभव कर रहा है तो वह सोया हुआ मनुष्य उस सुखका निरूपण क्यों नहीं करता ? सोये हुएसे कोई पूछे कि तुम कैसे सो रहे हो ? तुम्हें सुख है ना ? अच्छी तरह सो रहे ना ? तो वह कोई जबाब नहीं देता । तो सोया हुआ मनुष्य अपने सुखका निरूपण नहीं कर सकता । इसलिए कहना कि इसमें ज्ञान नहीं है, यह बात गलत है । किसी दो एक दिनका ऐदा हुए बच्चा माँके स्तनमें लगकर तो वह दूध पीता है ना ? …हां पीता है । …अच्छा, वह बच्चा दूध पीता है तो उसे उम दूध पीनेसे सुख होता है कि नहीं ? …सभी लोग इन बातको मानते हैं कि उस बच्चेको दूध पीते हुएपैं सुख होता है । उस दो एक दिनके बच्चेसे यदि कोई पूछे कि बताओ तुम्हें कैसा सुख हुआ है ? तो क्या वह बच्चा कुछ बता सकेगा ? अरे वह तो बोना ही नहीं है । तो जो सुखहो न बना सके उसमें तुम कहते कि सुख होता ही नहीं, तो तुम्हारी यह बात युक्ति संगत तो नहीं है । सोया हुआ मनुष्य यदि सुखकी बात न बता सके तो इसका अर्थ यह न होगा कि उसको सुखका सम्बेदन ही नहीं है ।

दुःखभावकी सुखभावव्यपता - यह भी नहीं कह सकते कि सोये हुएमें सुख नहीं है, किन्तु दुःखका अभाव है । सो गया, दुःख न रहा, सुख वहां कुछ है नहीं, तो कोई अभाव तुच्छ नहीं होता है । अभाव किसीके सद्भावरूप होता है । आकुलता न रही, वहां परम आलाद है उसका नाम आनन्द है । कोई कहे कि भगवानमें आनन्द है ही नहीं, न अरहतमें, न सिद्धमें, न बड़े योगीश्वरोंमें । उनमें आनन्द होता ही नहीं, केवल दुःखका अभाव है । दुःख नहीं है आकुलता नहीं है । अरे तो कोई तुच्छाभाव तो नहीं है । दुःख तो इन खम्भोंमें भी नहीं है । इनको कितना ही पांटो तो दुःख नहीं होता । तो क्या इन्हें सुखी कह देंगे ? नहीं इनमें न चेतना है न दुख सुख है । दुःख न होनेका अर्थ है सुख, आनन्द । तो उस सोई हुई अवस्थामें दुःख नहीं है इसका अर्थ है सुख है । तो जो सुख, दुःखका सम्बेदन करता है ऐसा सोया हुआ भी प्राणी ज्ञान वाला है, ज्ञानरहित नहीं है ।

आत्माकी सर्वत्र ज्ञानरूपता - आत्मा ज्ञानस्वरूप है, सदा ज्ञानमय है । यह जीव मिथ्याभावमें आया है । मोहबुद्धिमें आया तब इसका भवितव्य खोटा है । इमं बाह्य पदार्थ ही रुच रहे हैं । उन बाह्य पदार्थोंके सम्पर्कमें ही यह राजी हो रहा है । उस समय इसका ज्ञान दूषित है, मिथ्या हो रहा है । जब इस आत्मामें सद्बुद्धि जगती है अपने आपके स्वरूपकी पहिचान होती है—अरे यह मैं आत्मा तो सबसे

जिराला केवल ज्ञानानन्दमात्र अमूर्त, रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिको से रहता है। जब अग्ने स्वरूपकी सुख होती है तब इसमें बल प्रकट होता है कि क्यों किनी परमे आकृषित होना, क्यों किंतु परके विकल्पोंमें उलझना, क्यों अन्ती यह दुर्लभ जिन्दगी यों ही विषयोंमें खोना। जब वह परसे उपेक्षा करता है, अग्ने स्वरूपमें प्रवेश करता है तब उसके ये पाप हुए होते हैं। जब विषय कषायोंके पास दूर हुए और अतः गुदि बढ़ी कि शुद्ध ज्ञान उत्तम हो गया। बस अब ऐसा विशुद्ध ज्ञान निरन्तर बना रहे इस हीका नाम मोक्ष है।

भेदभाव और क्षणक्षयवादमें मुक्तिस्वरूपकी प्रकल्पना—इस पक्करणमें मूल बात तो मोक्षका चल रही है। मोक्षका त्वं इप क्या है इसपर चर्यायें चल रही हैं। जैन लोग तो मानते हैं कि अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शी, अनन्तशक्ति अनन्त अनन्द के प्रकट होनेका नाम मोक्ष है। इसके विवेकमें भ्रमों तक वो मतव्य आये—एक तो वैशिकका जिनका यह कथन है कि ज्ञान के विकासकी नाम मोक्ष है। जब तक आत्मा में ज्ञान रहता है तब तक यह संसारमें धूनता है। जब इसके ज्ञान सुख दुःख आदिक गुण अवगुण सब खत्म हो जायें, केवल एक चित्तस्वरूपमात्र रह जाये उसको नाम मोक्ष है। ये मोक्षमें ज्ञानको भी नहीं मानते। दूसरा मतव्य आया था क्षणिकवादियों का। उनका कथन है कि विशुद्ध ज्ञानके उत्तराश होनेका नाम मोक्ष है। बात ज्ञो यद्यपि सही है, लेकिन इस कथित विशुद्ध ज्ञानकी उत्तराश क्या है, जब यह ज्ञान है तब विदित होता है कि यह भी तो स कां स्वरूप नहीं बन सकता। क्षणिकवादियोंका विशुद्ध ज्ञान यह है कि एक समयमें एक ज्ञान पदार्थ रहता है। उसका आधारभूत कोई आत्मा नहीं है। जो एक समयमें ज्ञान हो उस हीका नाम आत्मा कह लो, उस हीका नाम ज्ञान कह लो। दूसरे समयमें वह ज्ञान नहीं रहता। प्रत्येक समयमें नयेनये ज्ञान पदार्थ प्रकट होते, इनके सिनेन्निनेमें यह जो भ्रम बर गया है कि मैं वह हूँ जो पहिले न था बस इस भ्रमसे संसारमें भ्रमण करना डड़ता है। जब यह ज्ञान हो जायगा कि मैं तो क्षणिक हूँ, एक समयसे हूँ और मिट गया, आगे पीछे रहता ही नहीं हूँ तो ऐसा जब एक क्षणिक आत्मा बोच होता है, तो इस अस्याससे एक ज्ञान ऐसा नया आयगा कि जिसके बुद्धि फिर और ज्ञान पैदा न होगा, इस हीका नाम मोक्ष है। इन मन्त्रव्योंके सब खत्में प्रब तक ये चर्चायें चलना और यह सिद्ध हुआ कि आत्माके ज्ञान और आनन्दके विशुद्ध अनन्त विकास होनेका नाम मोक्ष है।

विशेषवादीका अनेकान्त और मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें कथन—अब इस प्रसङ्गमें विशेषवादी अनेकान्तके दिलाफ आगा मतव्य रख रहे हैं और यह सिद्ध करना चाहते हैं कि स्याद्वारयें जो मोक्षका स्वरूप बताया है और मोक्षमें जो उपाय बताया है वह सही नहीं बेठता। विशेषवादी यहाँ कह रहे हैं कि ये स्याद्वारी लोग अनेकान्तकी भावनासे मोक्षशिलाके ऊपर अक्षय शरीर आदिके लाभ होनेका नाम

मोक्ष मानते हैं। देखिये ! इनकी शब्दयोजना तो यह है लेकिन अनेकान्तका प्रथं क्या करेंगे और अक्षयशरीरका प्रथं क्या करेंगे सौ यही खुद बतावेंगे। शङ्काकार कह रहा है कि अनेकान्त भावना से मोक्षशिला के ऊर अक्षय शरीर स्वरूप देहकी प्राप्ति होनेका नाम ज्ञानकी प्राप्ति होनेका नाम मोक्ष है, ऐसा स्थानादी मानते हैं और इस माननेमें यह दलील देते हैं स्थानादी कि अगर हम पदार्थोंकी नित्य माल लेंगे तो उस पदार्थमें हमारा स्नेह जगने लगेगा और अनित्य गान लेंगे तो उस पदार्थमें हमें छूणा, जगने लगेगा। इससे रागद्वेष न जागे इसके प्रथं अनेकान्तकी भावना की जाती है कि पदार्थ नित्य भी है अनित्य भी है ताकि रागद्वेष न रहे और इस अनेकान्तकी भावनासे मोक्ष का लाभ ही जाय, ऐसा स्थानादी मानते हैं। यह कथन बिना परीक्षा किए हुए है। इसके नियकरणमें वैशेषिक कह रहे हैं कि मिथ्याज्ञान कहीं मोक्षका कारण होता है, किसी पदार्थकी कह दिया कि यह नित्य भी है अनित्य भी है तो यह तो मिथ्या ज्ञान है। वैशेषिक कह रहे हैं जीनोंके प्रति कि यह तो मूठा ज्ञान है। अभी कह दिया नित्य फिर कह दिया अनित्य। और ! जो विश्वद्वयोंके चीजें हैं, नित्यका स्वरूप न्यारा है, अनित्यका स्वरूप न्यारा है, तो वैश्यारे-न्यारे स्वरूप बाले पदार्थ एक पदार्थमें ठहर कैसे सकते हैं ? कोई एक पदार्थ ठंडा भी रहे और गरम भी रहे ऐसा हो सकता है क्या ? अगर ठंडा है तो गरम नहीं है, गरम है तो ठंडा नहीं है। इसी तरह जीव युदि नित्य है तो अनित्य नहीं है और यदि अनित्य है तो नित्य नहीं है। उसे नित्य भी माने अनित्य भी माने यह एक पदार्थमें कैसे सम्भव है ? पदार्थ या तो नित्य ही मानो या अनित्य ही मानो। यह दुलमुल नीति क्यों ? यह सन्देह क्यों ? नित्य भी है और अनित्य भी है ?

दूसरे स्वरूपस्त्व और पररूपस्त्वकी इतरेतराभाव द्वारा सिद्ध करनेका विशेषवाक्योंका प्रस्ताव यदि यह कहो कि अनेकान्त तो पदार्थमें ही क्योंकि पदार्थ अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नहीं है यह बात तो मानती ही पड़ेगी, यह चीकी प्रपत्ने स्वरूपसे है, सभ्मा आदिक परके स्वरूपसे नहीं है, यह बात क्या गलत है ? वैशेषिक उत्तरमें कहते हैं कि यह बात अनेकान्तके कारण नहीं है किन्तु इतरेतराभावके कारण है। इतरेतराभावका क्या प्रथं है ? एक पदार्थमें दूसरे पदार्थ का अभाव रहता ! तो एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका अभाव है इस कारण यह व्यवस्था बनी हुई है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नहीं है। विषय बहुत कामका है, जो मुक्तिके उपायोंमें भी काम देगा। यहाँ पिद्धान्तका निराकरण कर रहे हैं वैशेषिक। जैसे स्थानादी मानते हैं कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है यह है स्थानाद, यह है अनेकान्त। देखो ना ! इस पदार्थमें दो पदार्थ एक साथ रह गए—अस्तित्व भी और नास्तित्व भी, तो इसके विश्व धर्म एक पदार्थमें रहा, इसमें विरोध कहाँसे आया ? उसके उत्तरमें कह रहे हैं वैशेषिक कि यह बात तो इतरेतराभावके कारण है, न कि अनेकान्तके कारण।

विशेषवादके इतरेतराभावका विवरण—वैशेषिक अभावनामक पदार्थ स्वतन्त्र मानते हैं। जैसे जीव है ना कुछ? समझमें तो आता ही है। है अज्ञा और पुद्गल है ना कुछ? है। तो इस तरह वे कहते हैं कि गुण भी है ना कुछ? समझमें आता ना? है। तो गुण भी पदार्थ है और पर्याय भी है ना कुछ? इसकी तो बहुत ज्यादह जरूरत पड़ रही है। हम आप जिसे व्यवहार करते हैं, जिसना बोलचाल करते हैं वह सब पर्याय ही तो है? है। और इसी तरह सामान्य विशेष समवाय भी है। और, एक अभाव नामक भी अनग पदार्थ है। जैसे पुद्गलके बारेमें तुम कहते हो यह है पदार्थ, इसी तरह अभाव नाम भी एक पदार्थ हुआ करता है। नहीं है, यह भी पदार्थ है। तो उस अभावके चार भेद किए गए—प्रागभाव, प्रवृत्तसाभाव, इतरेतराभाव और अत्यन्ताभाव। प्रागभावका अर्थ है कि कार्यसे पहिले कार्यका अभाव होना। जैसे मिट्टीके लौंघें घड़ा बनाया जाता है तो जिस समय मिट्टीका लौंघा है उस समय घड़ेका प्रागभाव है उस समय घड़ा तो नहीं है। जब लौंघा है तो लौंघेके समयमें घड़ेका प्रागभाव है। और जब उस लौंघेसे घड़ा बन गया तो घड़ा बननेके समयमें उस मिट्टीके लौंघेका प्रवृत्तसाभाव है और घड़ेमें करड़ा नहीं है कपड़ेमें घड़ा नहीं है। करड़ा अग्ने स्वरूपसे है, घड़ा अग्ने स्वरूपसे है, इसका नाम है इतरेतराभाव इतर मायने दूसरा दूपरेमें दूसरेका अभाव होना। घड़ेमें करड़ा नहीं पाया जाता, घड़ेमें घड़ा नहीं पाया जाता। यह बात इतरेतराभावसे बन रही है न कि अनेकांत से! इसी तरह अत्यन्ताभाव भी एक अभाव है। जो तीन कालमें भी कभी एक दूपरे रूप न बन सके उसे अत्यन्ताभाव कहते हैं। तो यह भी पद धर्में पाया जाता है। अनेकान्तके कारण पदार्थ अग्ने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है यह बात ठीक नहीं बैठती। ऐसा ये वैशेषिक सिद्धान्त वाले स्थादादका और स्थादाद सम्मुखोक्तके बारेमें कह रहे हैं कि यह अनेकान्त मिथ्या ज्ञान है।

स्वकार्यकर्तृत्व परकार्यकर्तृत्वको वस्तुस्वभाव माननेकी अनावश्यकताका विशेषवादीका प्रस्ताव यदि कहा कि अनेकान्तसे तो यह सिद्ध होता है कि प्रथेक पदार्थ अग्ने कार्य न तो करता है और दूपरेके कार्यका कर्ता नहीं है यह बात भी तो अनेकान्तसे सिद्ध होती है। जीव अंबीवकी पर्यायिको न करेगा तो यह बात अनेकान्तमें ही तो बनेगी। वैशेषिक निराकरण करते हैं कि इसमें भी अनेकान्त की कोई जरूरत नहीं है। पदार्थ अग्ने कार्यका करने वाला होता है अन्य कार्योंके करने वाला नहीं होता है, यह तो अन्वयव्यतिरेकसे सिद्ध है। इसमें अनेकान्तकी कथा आवश्यकता है? अर्थात् जो पदार्थ जिसके अन्वयव्यतिरेकसे उत्पन्न करनेमें व्यापार किया करता है वह उसका कारण है। जैसे घड़ेसे मिट्टी वाला ही कार्य उत्पन्न होगा, जलसे जल वाला ही कार्य उत्पन्न होगा। तो इसमें अन्वयव्यतिरेक का प्रभाव है। मिट्टीमें अन्वयरूपसे रहकर, तन्मयरूपसे रहकर जो उत्पन्न हो वह उसका कार्य है अथवा एकका दूपरे पदार्थमें निमित्तनींमतिक भावमें भी यह लगा

सकते कि जो जिसके होनेपर हो, वह उसका कार्य है। जो जिसके न होने पर न हो वह उसका कार्य है। तो कोई पदार्थ अग्रे कार्यको ही करता है परके कार्यको नहीं करता है यह बात अन्वयव्यतिरेकसे सिद्ध होती है अग्रेकांतसे नहीं। इसलिये अग्रेकांत की भावना करना प्रीर उससे मोक्ष सी आशा रखना यह असङ्गत बात है। अग्रेकांत का ज्ञान ही फूठा ज्ञान है।

मुक्त जीवमें मुक्त और संसारीपनेका अग्रेकांत ल। नेका विशेषवादी का उपालभ—अच्छा, फिर और भी बताओ कि जब अग्रेकांत ही अग्रेकांत लगाया जायेगा तब फिर पुक्त होनेपर भी अग्रेकांत लगाना पड़ेगा कि यह मुक्त होनेपर मुक्त भी है और संशारी भी। क्योंकि तुम्हें तो कई बातें कहनेकी प्रादत पड़ गयी हैं। वैशेषिक स्थाद्वादीसे कह रहे हैं। ये पदार्थ नित्य भी हैं, अनित्य भी हैं हर जगह दो बातें लगाते हों। यदि दो जगह लगावोगे तो गडबड हो जायगा। इससे मानना चाहिए कि अग्रेकांत ज्ञान फूठा है। उससे मुक्त नहीं होती। और फिर अग्रेकांतमें भी अग्रेकांत लगाना चाहिए ना, अग्रेकांत भी अग्रेकांतहा है। एक सत्त्वधर्म है, उसमें सत्त्व भी है और असत्त्व भी है। इस तरह किसी भी तरह किसी वर्मजी निद्वि नहीं कर सकते। नित्य सिद्ध कर रहे हों तो वहां भी यह लगा बैठें कि नित्यत्वमें नित्य भी है अनित्य भी है। इस तरह तो किसी भी बातकी सिद्धि नहीं हो सकती। जो भी बात कहेगे उसीमें ही उसके विशद्धकी बात लगा दी जायगी तब फिर अग्रेकांत का कोई तरीका सच्चा नहीं है। यह तो सन्देहमें डालने वाली बात है इससे कोई तुम्हारा ठीक निर्णय नहीं हो पा रहा कि जीव नित्य है कि अनित्य। जब जो समझ में आता उसे कह रहे हो। फिर ये मनुष्य किस ज्ञानका उहाग तें जिससे ये निःसन्देह रहें और अपने मोक्षमें चल सकें। तुम्हारे अग्रेकांतकी भावनासे मोक्षका लाभ लेना सही नहीं है ऐप्रा वैशेषिकवादियोंने कहा। अब इसका निराकरण किया जायगा।

विशेषवादी द्वारा स्थाद्वादके प्रतिपक्षमें अग्रेकांत और मोक्षस्वरूपका असंत प्रतिपादन—मोक्षके स्वरूपके वर्णनमें वैशेषिकोने यह कहा था कि जैन लोग मोक्षका स्वरूप मानते हैं कि अग्रेकांतकी भावनासे मोक्ष शिलाके कारण प्रक्षय शरीरका लाभ होना सो मोक्ष है। प्रथम तो वे मोक्षके स्वरूपको ही ठीक नहीं बता सके हैं। मोक्ष नाम मोक्षके शिलाके कारण बैठ जानेका नाम नहीं है। जहाँ पिछ मगवान विराज रहे हैं वहाँ संसारी जीव भी भीजूद हैं वे ज्योंके त्यों दुःखी हैं और वहाँ सिद्ध प्रभु अग्रन्त्य आनन्दमें लीन हैं तो कहीं लोकके अन्तपर पहुंच जानेसे भगवान् नहीं बन जाते हैं। दूसरे उनका प्रक्षय शरीर क्या है? शरीरका तो अभाव ही हो गया है अब तो शारणका शुद्ध विकास अग्रेकांतकी भावनासे ही सीधा प्रकट होनेकी बात नहीं है। अग्रेकांतसे तो पदार्थका निर्णय होता है। जीव नित्य है अथवा अनित्य है आदिक जो विचार हैं उनका निर्णय स्थाद्वादसे होता है।

अब निर्णय करनेके बाद उसमेंसे हमें कौनसा तत्व ग्रहण करना चाहिए और कौनसे तत्वको उपेक्षा करना चाहिए ? जैसे कोई कहे कि पृथ्वी भला है और पाप बुरा है। तो व्याख्यान देनेका यह अर्थ तो नहीं है कि पुण्यको भी लो और प्राप्तको भी लो। केवल निर्णय बतायां हैं। अब उसमेंसे क्या लेना है और क्या छोड़ना है यह तो स्वयं समझ जायगा। तो अनेकांतसे होता है पदार्थका निर्णय और निर्णय होनेपर फिर जो आत्माका सहज स्वरूप है शाश्वत, उसका प्रृष्ठ होता है और परखण्डोंका अनित्यरूपों का त्याप्त होता है; यही है अन्तः साधना।

मोक्षप्रकरणमें ज्ञिकटतम् कारण और अनेकांत दर्शनका सहयोग—  
निर्विकल्प समाधिसे मोक्ष होता है। स्याद्वादसे तो पदार्थके स्वरूपका निर्णय होता है निर्णय करनेके बाद जो निर्विकल्प समाधि बनती है जहाँ किसी प्रकारका विकल्प न जगे, केवल ज्ञाता मात्र रहे, ऐसे समतापरिणामकी अनुभूतिसे मुक्ति होती है। फिर यह कहता है कि पदार्थको नित्य माना जायगा तो उसमें स्तैह जैगेगा, अनित्य माना जायगा तो उसमें द्वेष जैगेगा इसलिए नित्यानित्यात्मक सामनेते हैं स्याद्वादी तो इप्रयोजनके लिए नित्यानित्यात्मक नहीं माना जाता। पदार्थकी जातकारीकी जाती है। जीवको नित्यानित्यात्मक जाननेसे कि यह जीव द्विवद्वाष्टये नित्य है पर्यायद्विष्टये, अनित्य है तो नित्यका आश्रय करेगा जिसे अनित्य जाना है। जैसे कि उसकी पर्याय अनित्य है कोई विषय इच्छा आदिक होते हैं जिनकीक है तो स्वतः ही उनका आदर न करेगा यह जीव। जब ये नष्ट हो जाने वाले हैं और उनका शाश्वत स्वरूप नहीं है तो फिर उनमें न फैसेगा। और नित्य जाननेपर कि यह ज्ञानस्वभाव सहज शाश्वत है और यही मैं हूँ ऐसा समझलेपर इसपर द्विष्ट वेगा तो यह तो भला है ज्ञानका कहीं इस भावसे नहीं किया गया कि अनित्य को जाननेसे द्वेष उत्पन्न होता है इसलिए अनित्य मत भानो और नित्यको जाननेसे स्तैह जगता है इसलिए नित्य न भानो। यह प्रयोजन नहीं है। अनेकांत ज्ञानमें कोई बाधा नहीं है, वह मिथ्याज्ञान नहीं है, अनेकांत ज्ञानसे तो होता है वस्तुके स्वरूपका ज्ञान और उससे होता है सहजस्वरूपका परिवर्य, फिर बनती है निर्विकल्प समाधि, और समाधिकी बलसे होता है मोक्ष।

वस्तुस्वरूपके निर्णयकी पृद्धति—अब निर्णयकी बात सुनिये ! अनेकांतसे जो निर्णय किया जाता है वह सही निर्णय होता है। एक द्वप्रांत लो—जैसे चार अंचे पुरुष हाथीके स्वरूपको जाननं चले तो एक अंचेके हाथमें आया हाथीका पैर तो वह तो इस बातर अड़ गया कि हाथी तो खम्मेकी तरहका होता है। एकके हाथमें लगा पेट, तो वह कहता है कि हाथी ढोलकी तरह है। एकके हाथमें लगी सूड तो वह कहता है कि हाथी झूलकी तरहका होता है। एकके हाथमें लगे कान तो वह कहता है कि हाथी सूपकी तरहका होता है। चारों परस्परमें झगड़ने लगे, तो कोई एक सूझता पुरुष आया। उनके झगड़नेका कारण मालूम किया और उन्हें समझाया

कि भाई ! तुम चारोंसी बात सही है । पैरोंकी दृष्टिसे हाथी खम्मे जैसा होता है, पेट की दृष्टिसे हाथी ढोल जैगा होता है, सूँड़की दृष्टिसे हाथी मूसल जैसा होता है और कानोंकी दृष्टिसे हाथी सर्व जैसा है । तो अब निर्णय तो सभी दृष्टियोंते सब बातोंके जा नेसे हुमा करता है । तो अनेकान्त तो वस्तुत्वव्यवहारका निर्णय देता आ । निर्णय पाने के बाद हमें क्या करना चाहिए ? किस वर्गसे शांति लाभ हो, यह किर आनी बात है । जो हेय चीज हो उससे उपेक्षा करें और जो स्वयं स्वरूप है उनमें रुचि बढ़ावें । वस्तु नो निर्णयनित्यात्मक है । कोई भी पदार्थ हो, वह कृत्य अररिणामी नहीं है । उसमें कुछ अवस्थाएँ ही न हो, केरकार ही न हो वह वस्तु नहीं होती जौर कोई वस्तु अण-क्षणमें अनी सत्ता खोये ऐसा भी नहीं है ।

दृष्टिविशेषसे विरुद्धाविरुद्ध धर्मोंके एकधर्मी रहनेका निःसंदेह निर्णय यह है उगलन्म देना ठीक नहीं कि कोई वस्तु नित्य है तो अनित्य कैसे होगी ? अनित्य है तो नित्य कैसे होगी ? अरे, ये दोनों बातें वस्तुमें प्रतीत हो रही हैं । किर विरोधकी क्या बात ? जिस दृष्टिमें नित्यपन बनायी जाय उस ही दृष्टिमें अनित्यपना कहो जाय तो विरोध आयगा । जैसे-एक युवकको कहें कि यह प्रिता भी है, पुत्र भी है तो जिसका पिता बताते हैं उसीका ही पुत्र बतावें, तब तो विरोध है । अब अमुकका तो पिता है और अन्य अमुकका पुत्र है तो इसमें विरोधकी क्या बात आयी ? इसी तरह अनेकों दृष्टियोंसे ही अनित्य है ऐसा कहा जाय तो विरोध है । जैसे इस चीजी की लम्बाई चार फिट और चौड़ाई सबा फिट है । और कोई कहे कि लम्बाईकी अपेक्षा भी ४ फिट है और लम्बाईकी ही अपेक्षा सबा फिट है तो इसका विरोध है । जब दृष्टियां अलग अलग हैं-और उन दृष्टियोंसे अलग अलग बात है तो उनका विरोध नहो है । नित्य तो उसे कहते हैं जो निरत्तर रहे-प्रत्येक पर्यायमें रहे और अनित्य उस कहते, कि जो या वह प्रथा नहीं रहा; ऐसा जहाँ व्यतिरेक हो, व्यावृत्ति हो, उसे अनित्य कहते हैं । जैसे अगुली सीधी है फिर टेढ़ी है और किर गोल ली । तो इन सब अवस्थाओंमें अगुली तो वही है न ! तो जब अगुली मात्र सो दृष्टिसे देखते तो कहेंगे कि अगुली सदा रहनी है और जब अवस्थाओंकी दृष्टिसे देखते हैं जब सीधी है तब टेढ़ी नहीं, जब टेढ़ी है तब सीधी नहीं । तो यह अनित्य बन गया । तो दृष्टि न्यारी न्यारी है ड्रुपुसे न्यारे धर्म एक पदार्थमें कहे गए हैं । एक ही दृष्टिसे विरुद्ध धर्म नहीं बताये जाते हैं । भिन्न-भिन्न धर्मोंका भिन्न-अवयव अभेद धर्मोंमें निमित्तोंके विविधनियेवोंका एक पदार्थमें लिखें नहीं किया जाता है अन्यथा तो कुछ भी नहीं बोल सकते, मैं अमुक को करता हूँ तो इसको अर्थ है कि और कुछ नहीं कर रहा हूँ, जो लोग मानते हैं कि ईश्वर कर्ता है तो और आरी, सप्ताहके और जीव ? ये कर्ता नहीं हैं तो बतावो दो धर्म तुम्हारे भी सिद्धान्तमें आये कि नहीं ?

निर्णय और व्यवहारमें स्याद्वादका स्थान — स्याद्वाद बिना तो कोई जिह्वा

भी नहीं हिला सकता । स्याद्वादके बिना तो व्यवहार भी नहीं चल सकता । दृष्टि-दृष्टिसे देखा तो पदार्थ नित्य है, पर्याय दृष्टिसे देखा तो अनित्य मिला । देखेंगे यह तत्त्वज्ञानकी बात जैन शासनकी मूल बात है । जो इस बातको नहीं जान सकता वह तो मोक्ष आयेंगे रंच भी कदम नहीं रख सकता । लोग कहते हैं ना—राजा, राणा, कात्रपति, दायिनके असबार, इन सबको मर्त्य है, ये विनाशीक हैं । तो विनाशिक तो हैं लेकिन इनका कथा समून नाश हो जायगा ? प्रेरे जो जीव आज राजाकी पर्यायमें है उस जीवकी राजाकी पर्याय नष्ट होगी, जीव नष्ट न होगा । कोई पदार्थ मूलमें नष्ट नहीं होता । हमें जानना होगा उसका विरोधी वर्ण भी । मैं हूँ तो मैं हूँ मैं और कुछ नहीं हूँ । यह बात तो उसके पेटेमें पड़ी है ना । कुछ भी बात आप बोलेंगे वह स्याद्वादको लिए हुए बात होगी । देखो एक मनुष्य प्र० वर्ष तक जीवित रहता है तो वह पर्हिले बालक था, फिर जवान हुआ अन्तः थोड़ा बूढ़ा भी हुआ । तो उसमें जो ये तीन अवस्थायें एक दूसरेसे विशद्ध हैं ना । बचपनमें जवानी कहीं, जवानीमें बचपन कहां ? तो इन अवस्थाओंका तो विरोध है पर एक मनुष्यमें ये अवस्थायें रहा करती है । क्या विरोध है ? मनुष्य वह है जो इन सब अवस्थाओंमें वहीका वही रहे । तो जो पूर्वकालमें रहने वाली पर्याय और आगे होने वाली पर्यायमें अनुवर्त्तरूपसे रहे ऐसा हमें सब कुछ नजर आ रहा है और पर्याय भी दृष्टिमें आ रही है और उनमें रहने रहने वाला एक पदार्थ है यह भी समझमें आ रहा । तो जो बात प्रतीतिसिद्ध है उस का अप्लाप करना व्यर्थ है । स्याद्वादसे ही तत्त्वनिर्णय होता है और यही सम्यज्ञान को उत्पन्न कर सकता है । तो यह कहना कि अनेकांतका ज्ञान मिथ्या है इसलिए उसकी भाग्यनासे मोक्ष नहीं हो सकता, यह गलत है ।

**वास्तवमें ज्ञानका प्रयोजन अज्ञाननिवृत्ति - विशेषयादीका** यह भी कहना गलत ही है कि “अनित्य मानोगे तो द्वेष हो जायगा और नित्य मानोगे तो स्नेह जग जायगा, इस कारणसे नित्यानित्यात्मक मान लो !” पदार्थ ही नित्यानित्यात्मक है । जो जैसा है उसको उस रूप मानना ही चाहिये । आप देख लीजिये ! समस्त पदार्थ बनते हैं बिंगड़ते हैं फिर भी बने रहते हैं । ये तीन बातें हर एक पदार्थमें हैं कि नहीं ? जैसे दूध, दही, घी । जिस पदार्थका दूध होता है दही होता है उसका नाम गोरस मान लीजिए ! तो गोरसकी दृष्टिमें वह वे तीनों अवस्थायें रहीं और अवस्थाओंकी दृष्टिसे वे ग्रलग-ग्रलग रहे । किसी पुरुषने बिंद गोरसका त्याग कर दिया है तो वह वे तीन चीजें नहीं खा सकता । और किसीने दूध ही त्याग किया है वह तो दही ले सके, घी ले सके । तो यद्यपि दही, घी भी गोरस है, पर उसने उसकी एक पर्यायिका त्याग किया । तो एक ही चीज है उसमें पर्याय होती रहती है बनती हैं बिंगड़ती हैं फिर भी बने रहती हैं । तह बात प्रत्येक जीवमें है और ऐसा माने बिना व्यवहार भी नहीं चल सकता । कोई पुरुष यह सोचकर कि मेरी दुकानमें यह सोनेकी कलसिया बहुत दिनोंसे पड़ी है और इसे कोई खरीद ही नहीं रहा है तो इसका मुकुट बनवालें,

आजकल पर्वके दिन हैं, लोग खरीद लेंगे। तो उस कलसियाको तोड़ करके मुकुट बनाया जा रहा था इतनेमें वहाँ तीन प्रकारके मनुष्य आये। एकको तो चाहिये थी प्रभिषेक करनेके लिए कत्सिया, एकको चाहिए था मुकुट और एकको चाहिए था सोना। जब वे तीनों दुकानपर आए तो जो कलस चाहता था उसको तो खेद हुआ, मैं आध बांटा पहिले आता तो बना बनाया कलस मिलता और कुछ सस्ता भी मिलता। और, जो मुकुट लेने वाला था उसको वृद्ध हुआ, वाह कैसा बना बनाया मुकुट जल्दी ही मिल जायगा, अधिक समय तक मुकुट ढूँढ़ना न पड़ेगा। और, जिसे सोना चाहिए था उसे न हर्ष था न विषाद। वह तो गिलसिया रहती तो लेता, मुकुट बनेगा तो लेगा। तो ये जो तीन भाव हुए हैं उनका कारण जो उत्पादव्यधीय है वह भी तो तत्त्व सही निकला। प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्यधीयात्मक है। तो स्याद्वादसे तत्त्वका निर्णय होता है, वह मिथ्याज्ञान नहीं है।

अनेकात्मक वस्तुके वस्तुत्वके ही कारणस्वरूप सत्त्व और पररूपासत्त्व की व्यवस्था—विशेषवादने जो यह कहा था कि पदार्थ अपने प्रदेशमें है दूसरेके प्रदेशमें नहीं है यह बात अनेकांतके कारण नहीं किन्तु इतरेतराभावके कारण है। यह बात भी युक्त नहीं जचती क्योंकि इतरेतराभावका अर्थ क्या है? यह तो पदार्थोंका ही निजस्वरूप है कि अपने प्रदेशमें रहे दूसरेके प्रदेशमें न रहे, यह तो पदार्थमें स्वयं पड़ा हुआ है। इतरेतराभाव और क्या चीज़ है? दो अंगुली हैं छोटी बड़ी। छोटी अंगुलीमें बड़ी अंगुली नहीं है, बड़ी अंगुलीमें छोटी अंगुली नहीं है, तो यह इन्ही अंगुलियोंका स्वरूप हुआ जा कि इसमें कोई तीसरा व्यवस्था करने आया है इतरेतराभाव या और कुछ कि एकमें दूसरा नहीं आ सकता। और इसका स्वरूप ही यह है कि वृत्ति अपने स्वरूपसे रहती है और परके स्वरूपसे नहीं रहती। स्याद्वादमें मूल बात बतायी गई है कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है। यह बात तो जरा दिल लगाकर सुननी पड़ेगी। कभी भी समझें। इसके समझे बिना तो निर्मोहता का मार्ग नहीं मिल सकता। और, जब तक जीव निर्मोह नहीं हो सकता तब तक उसे शान्ति नहीं है।

निर्मोहनाका उपाय यथार्थज्ञान—जीवका मोह कैसे गले, इसका उपाय क्या है? ज्ञान। जैसे कहीं पड़ी तो थी सीप और जान गए चांदी तो शब् यह चांदी का लोभी पुरुष बहुत विकल्प करता है। मैं इसे उठा भूँ। उसके लिए दौड़ता भी है अथवा यहाँ वहाँ तकता भी है, समयकी बाट जोहता है। और, कहीं उसे यह ज्ञान हो जाय कि शरे वह तो सीप है तो देखो सारी विकलतायें उसकी दूर होती हैं ना। इस गृहस्थको यह अग्र हो गया कि यह स्त्रीका जीव मेंग कुछ लगता है, ये पत्रादिक परिजन मेरे कुछ लगते हैं। यह अज्ञान अंघकार बन गया तो अब यह पुरुष उसके लिए अपनी भी जान न्योछावर कर देता है। और, खुद भूखा रहता है, बड़े-बड़े परि-

श्रम करता है। कभी शांति नहीं पाता, क्योंकि उसे भ्रम लग गया है ना। और तुम उसके लिए क्या परिश्रम करते हो? जो तुम कर रहे हो परिश्रम अर्थात् उनकी जो नोकरी कर रहे हो, सेवा कर रहे हों, इसमें उनका खुदका पुण्यका उदय है। स्त्री पुत्रोंका ऐसा विशेष पुण्य है कि यह पुरुष तो रात दिन पिलेगा दुकानमें यहाँ बढ़ाओं और स्त्रीको पालनामें बैठाये रहेगा न तो स्त्रीसे रोटी बनवायेगा न और कोई काम लेगा। बस वह स्त्री दिन भरमें दसों बार साड़ी बदलेगी और इधर उधर धूमे किरेगी बतलाओ उस पुरुषसे अधिक पुण्यका उदय उन स्त्री पुत्रादिकका है या नहीं? है। तो फिर क्यों इतनी उनकी फिकर की जा रही है? लेकिन भ्रम लगा है ना कि इन्हें मैं ही तो पालता हूँ, ये मेरे ही तो कुछ लगते हैं बथ इय भ्रमके ही कारण इस पुरुष को रात दिन जुनना पड़ता है। शांति कहाँ मिज पानी है?

ज्ञानप्रबोध द्वारा नीराग होनेका उदाहरण —जब लक्ष्मणजीका देहान्त हो गया तो रामचन्द्र ने लक्ष्मणके मृतक देहको ६ मास तक लिए रहे। बहुतसे लांगों ने रामचन्द्र जीको समझाया, पर उनकी बुद्धि तो उस समय जरा क्षोभमें थी सो उन्होंने किसीकी न मुनी। एक देवते पत्थरपर कमल लगानेका काम दिखाया तो रामचन्द्र जी ने पूछा भाई! यह क्या कर रहे हो?... औरे इस पत्थरपर कमल बो रहे हैं। औरे कहीं पत्थरपर कमल भी लग जाते हैं क्या? औरे तो कोई मुर्दा शरीर खाता पीता भी है क्या? इसलेपर भी रामचन्द्र जी कुछ न समझ न के। एक देवते कोल्हमें बालू थेलनेका काम दिखाया। रामचन्द्रने पूछा यह क्या कर रहे हो? औरे इस कोल्हमें बालू पेलकर तेल निकालेंगे। औरे कहीं बालूमेंसे तेल भी निकला करता है क्या? औरे कहीं मुर्दा शरीरमेंसे बोलचाल भी निकला करता है क्या? इगपर भी रामचन्द्र जी कुछ समझ न सके। तीसरे प्रश्नमें यह दिखाया कि मुर्दा बैलोंको गाड़ीमें जोत रहे हैं। रामचन्द्र ने पूछा भाई! यह क्या कर रहे हो? औरे इन मुर्दा बैलोंको गाड़ीमें जोत रहे हैं। औरे कहीं मुर्दा देह भी खा पी सकता है क्या? लो इस बार रामचन्द्र जीकी गुन्यी सुनभी, तुरन्त प्रबोध हुआ, ज्ञान तो था, पर व्यासंग हो गया था। उसके बाद फिर वे इतना अडिग रहे कि सीताजीके जीव प्रदीन्द्रने भी नाना हाव भाव करके रामचन्द्र जीको डिगाना चाहा, इसलिए कि रामव द्व जीका तरवरण अभी भय हो जाय, यह अभी मोक्ष न जायें, आगे हम और ये दोनों मोक्ष जायेंगे। लेकिन उस समय रामचन्द्र भी न डिगे। तो जब जीवका भ्रम मिटता है तब शान्ति प्राप्त होती है। भ्रम मिटने का साधन है त वज्ञान। तत्वज्ञानका साधन है स्याद्वाद। प्रत्येक पदार्थ अगले स्वरूपसे सत् है, पर रूपसे सत् नहीं है। यह पदार्थका ही धर्म है न कि इस व्यवस्थाको बनाने के लिए कोई इतरेताभाव आया।

वस्तुत्व न मानकर इतरेताभाव द्वारा स्वरूपसत्त्व पररूपासत्त्वकी

**व्यवस्था करनेमें आपत्ति—** इतरेतराभावका अर्थ बताया कि एकमें दूसरा नहीं। चौकीमें पुस्तक नहीं। तो पुस्तकमें चौकीका अभाव है चौकीमें पुस्तकका अभाव है। यह अभाव इसकी व्यवस्थायें बना रहा है। लेकिन अभाव कोई अलग पदार्थ नहीं है। चौकीमें ही स्वयं ऐसा गुण है, ऐसी सत्ता है कि वह अपने प्रदेशमें है और दूसरेसे नहीं है। तभी तो यह निर्णय लेनेगा कि मेरा आत्मा मेरेमें ही है। दूसरेके आत्माका मेरेमें कोई सम्बन्ध नहीं। वे अपने स्वरूपसे हैं। जब पदार्थोंकी यह बात निज तत्वकी बात ध्यानमें आती है तब वहाँ मोह नहीं रहता। किसें मोह करता। कौन है मेरा। मेरे ज्ञानानन्द स्वरूपके अतिरिक्त लोकमें कुछ है ही नहीं। अन्तर्दृष्टि करके जरा ध्यान में लावो, मोह मोहमें ही सारा जीवन गर्व दोगे तो क्या फायदा मिलेगा? लोग असमयमें मर जाते हैं। अपनी भी कल्पना करो। अबसे दो चार वर्ष पहिले ही मर गये होते तो इस सकलमें कहाँ होते? किर कहाँ रहना यह समागम? क्या तब मर न सकते थे? बच गये तो हम दुनियके लिए नहीं बचे अपने लिए बचे, ऐसा मान कर घर्म साधनामें लगना चाहिए। घर्मका यदि सहारा न रखा तो मनुष्य जन्मका पाना न पाना बेकार है। इसनिए ज्ञानका अजंन करना और घर्म पालन करना यह मुख्य काम है। वैभवमें क्या दम है। पुद्गलका ढेर है। इस पुद्गलके ढेरसे मेरे आत्मा को क्या लाभ है? आत्माका लाभ सम्यक्त्व ज्ञान और चारित्रमें है, ऐसे रत्नत्रय घर्मकी सेवा करके अपना जीवन सफल करना चाहिए।

**वस्तुस्त्वाहित्से ही अन्योन्याभावका अवरोध—** वैषेषिकसिद्धान्तवादियोंने स्याद्वादके तरीके और मोक्षके स्वरूपपर अपना पक्ष बताया था। उसके उत्तरमें कह रहे हैं कि एक वस्तुका दूसरी वस्तुमें जो अभाव होता है वह वस्तुकी खासियत है। इतरेतराभावके कारण एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अभाव है। यह बात सही नहीं है। इतरेतराभावकी बोत कहना तो कलित सिद्धान्त है। जैसे यह चौकी पुस्तकमें नहीं, पुस्तक चौकीमें नहीं, इसकी व्यवस्था करने वाला इतरेतराभाव नहीं है, किन्तु वस्तु की सत्ता ही स्वयं अपने आदमें व्यवस्था कर लेती है। अब ऐसी व्यवस्थित वस्तुओंको निरखकर यह कहना कि उसमें इसका अभाव है, इतरेतराभाव है तो यह तो कल बताया गया है। कोई इतरेतराभाव जिसकी सत्ता हो और वह व्यवस्था करे ऐसी बात नहीं है। यदि इतरेतराभावको कोई वास्तविक चीज़ पाना जाय तो बताओ कि वह इतरेतराभाव इस चौकीसे अभिन्न है या भिन्न है अर्थात् चौकीमें पुस्तकका अभाव है यह पुस्तकाभाव चौकीमें अभिन्न है क्या? अगर अभिन्न है तो चौकी कभी नष्ट हो जाय तो इसका अर्थ है कि पुस्तकाभाव नष्ट हो गया तो पुस्तक उत्पन्न हो जाना चाहिये, पर ऐसा तो नहीं। यदि कहो कि चौकीसे वह इतरेतराभाव [पुस्तकाभाव] भिन्न है तब फिर भिन्न ही रह नया तो चौकी और पुस्तकमें अन्तर कैसे डालोगे? इस कारण इतरेतराभाव अलग कोई है और वह व्यवस्था करता है यह सही नहीं है, वस्तु अनेकांतात्मक है, यह सिद्ध किया जा रहा है। जब देखिये! जब तक यह

निरंय न हो जाय किसीको कि प्रत्येक पदार्थ अनेकान्तात्मक है वह व्यापार प्रदृष्टि नहीं कर सकता। पदार्थ वस्तुतः तो अवक्तव्य है न उसमें कोई घर्म बता सकते न उसमें कुछ बगंत चल सकता लेकिन अवक्तव्य अलगड बस्तुमें जब हम कोई परिज्ञान करना चाहते हैं तो उसका तरीका यह है कि हम स्याद्वादके द्वारा अपेक्षा लगाकर उसमें अमंको देखें। ऐसा किए बिना वर्धाय निरंय नहीं हो सकता। किर दूसरी बात यह कि यह कहकर जो वंशजने खण्डन किया था कि कोई भी पदार्थ अन्य कार्योंका अकर्ता नहीं है यह तो इतरे राराभावसे बनता है। तो यहाँ पहिले तो कार्य कर्तृत्व ही सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि पदार्थ अगर सर्वथा नित्य है तो कार्य केसे होगा अनित्य है तो कार्य क्या हो सकता।

ऋग्मानेकान्तसे मुक्तमें मुक्तत्वके प्रतिपक्ष घर्मकी सिद्धि - यह कहना ठीक नहीं कि फिर तो मुक्तिमें भी अनेकां लगावें कि मुक्त जीव मुक्त भी हैं और संसारी भी हैं। यह दूषण नहीं है। एकांत दो प्रकारके होते हैं ऋग्मानेकांत और अक्रमानेकांत। ऋग्मानेकां भी अपेक्षासे यह कह सकते कि यह जीव पहिले सपारी था अब मुक्त है। अनेकांतमें जब हम ऐसे ऋग्मको हृषि रखेंगे तो यह भी कह सकते। और फिर इस सम्बन्धमें सौधी बात यह है कि मुक्तके माथ अमुक्त प्रतिपक्षमें नहीं आता, किन्तु मुक्तके माथ अमुक्त प्रतिपक्षमें आता है। प्रभु सिद्ध भगवान् मुक्त भी हैं अमुक्त भी। मुक्त तो रागदेषसे छूट जानेके कारण हैं और अमुक्त अपने ज्ञानादिक गुणोंसे हैं। मुक्तके मायने जो छूट जावे। प्रभु सिद्ध भगवान् छूट भी चुके और नहीं भी छूटे। छूटे तो कर्मोंसे, पर अपने स्वल्पसे जानसे आनन्दसे इनसे तो नहीं छूटे। तो वहाँ कह सकते हैं कि प्रभु मुक्त भी हैं और अमुक्त भी हैं।

अनेकांतमें भी अनेकांतरूपता ऐसा भी कहना योग्य नहीं कि तब तो अनेकांत में 'भी' अनेकांत लगाने कि अनेकांत 'भी' है और एकांत 'भी' है। कहते हैं कि यह बात भी सही है, इसमें दूषणकी बात नहीं है। अनेकांत अनेकांत 'भी' है और अनेकांत ही ते ऐसा एकांत नहीं है ऐसा अनेकांत 'भी' मान लो। इसलिए यहाँ दूषण नहीं आता। कैसे मानते हम एकांत कि अनेकांतसे, प्रमाणसे किसी वस्तुको हमने जाना, अब उस जानी हुई वस्तुमें जो एक-एक घर्म है, जो नयोंके द्वारा जाना जाता है प्रतिपादित किया जाता है तो नयोंकी हृषिसे वह अनेकांत एकांतका अविनाभावी है, अनेकांत एकांत बिना नहीं हो सकता। सुनयोंका एकांत जब मान लिया जायगा तब ही हम अनेकांत कह सकते। इससे यह कहना कि अनेकांत भावनासे यह जान लिया, माझिलाके ऊपर एक शुद्ध शरीरको प्रसू करता है उसका नाम मोक्ष है, यह कहना ठीक नहीं है। मुक्ति मोक्ष गिलापर पहुँचनेसे नहीं होता, किन्तु स्वभाव विशुद्ध हो जाय और सर्व उपाधियाँ दूर हो जायें तब मोक्ष कहलाता है।

विकल्पनिद्राकी परेशानी दूर करनेके लिए जागरण—ये संवारी वृत्त

सब परेशान हैं। कोई राग करके, कोई द्वेष करके । रेशान है, कोई अज्ञानसे परेशान है। इस संसारमें जो भी समागम दिल रहे हैं इनको अपनाकर ये जीव दुखी हो रहे हैं। इनके ये दुःख कैसे भिट्ठे हैं? इसका उपाय उन्हें जहर करना होगा। और, इसके उपाय करनेका अवसर है यह मनुष्य भव। श्रेष्ठ मन मिला है, तुद्धि भी मिली है, जैन धर्मका समागम प्राप्त हुआ है, बड़े बड़े अध्येत्संघोंने तपश्चरण करके बड़ी साधना करके जो अनुभव प्राप्त किया था कहणा करके उन्होंने वह अनुभव बन्धोंमें लिख दिया है वे हमें आज प्राप्त होते हैं। तो कितना सुन्दर अवसर है, और जब संसारके लगावपर हृषि डालते हैं तो यह व्यासझ कितना असारभूत काम है। एक जीवका दूसरे जीवके साथ सम्बन्ध क्या है। जब पूर्ण सत् प्रत्येक जीव है, किमी जीवका सत्त्व किसीको उपेताका रखकर नहीं है तो किसीको कोई लोग कैसे जाने? पहिले दो बातोंपर ध्यान देना है। जिसे मारा मोही जगत मानता है कि यह मेरा अपुक है, मेरा कुदुम्ब है, मेरा वंभव है, ऐसा जो यमकार करता है तो विचारना चाहिए कि वस्तुस्थिति क्या हो सकती है। और ये जीव यमकार क्यों किये जा रहे हैं। यमकार करने वाले लोग भी आखिर मरते हैं, विछुड़ते हैं, तो फिर यमकारकी हृषिक्षे भी यमकार सारभूत चीज नहीं है। वस्तुपद्विसे भी सारभूत चीज नहीं है। अनन्त जीवों मेंसे अटपट कुछ जीव वरमें इकट्ठे हो गए तां उन्हें मान लिया कि ये मेरे हैं, किमी जीवकी कषायसे अपनी कषाय मिल गई तो उसे मान लेते कि यह मेरा मिश्र है, वस्तुतः कोई किसीका यहीं मिश्र है क्षमा? कोई किसीका कुछ कर सकने वाला है क्षमा? सब अपनी अपनी कषायके अनुसार चेष्टा करते हैं। तब यहां किउंमें अपने चित्तको रमाया जाय। विकल्प करना व्यर्थकी हैरानी है।

मोह चिन्तासे लाभकी अशक्यता—जब यह स्पष्ट है कि यहां कोई किसी का मिश्र नहीं, अगर कषायसे कषाय मिल गयी तो मिश्र मान लिया और अगर अपनी कषायसे दूसरंकी कषाय विश्वद दिली, तो उसे अना विरोधी मान लिया। वस्तुतः यहां न कोई किसीका मिश्र है न कोई किसीका विरोधी है। फिर उस ही रप्तारमें वहे जाना, जो कुछ रप्तार हम पहिले ही करते आये हैं, जो ढङ्ग बनाया है यमकार करते रहना, अनेको जलाना, अपनेको बरबाद करना उस ही वेगमें, उस ही पद्धतिमें रहे तो अना भला नहीं है। अपनंको साहम करना होगा कि वस्तुतः मुझे दुनियाका रहे भी पुरुष नहीं जानता। यदि आप मेरे स्वरूपको जानते हैं तो आपके लिए मैं विषय नहीं रहा, जापके लिए चैतन्यस्वरूप रहा विषय। और यदि नहीं जानते यथार्थतः मेरे स्वरूपको तो जिसे जानते हुएं अपने मनसे कल्पनायें करके, आप उसके प्रति मित्रता या बैरका विकल्प कर सकते। यहीं बात सब जीवोंकी है। तो जब सब काम हमें अग्ने आप ही अकेलेसे अग्नको करना है तो हमें क्यों न कुछ विशेष अपना ध्यान रखना चाहिए। दूनरेके विकल्प—विकल्पमें ही समय गुजरे, जिसे कहते हैं मोह चिन्ता, पर जीवोंके सम्बन्धमें मग्न होकर उनके ही विकल्प बनाये रहना यह तो

श्रवणाद्यम चिन्ता कहलाती है। उसमें अपनेको लाभ नहीं मिलनेको है। अपना लाभ मिलेगा खुदको खुब ध्यानमें रखे—मैं ज्ञायकस्वरूप हूँ, ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञानमात्र कहनेमें जो कुछ समझानेके लिए कहा जाता है वह सब गम्भिन हो जाता है। अपने आगे के उपयोगको इस तरह बनायें कि यह ज्ञानज्योति है केवल ज्ञानप्रकाशमात्र, ज्ञानमात्र है। जिस जाननमें रूप, रस, गंध, स्वर्ण तो नहीं है, जिस जाननमें केवल एक अमूर्त जाननभाव आता है।

स्वका संवेदन हो सकनेका कारण—हम चूँकि जानन सदा किया करते हैं, चाहे किसी प्रकार करें, सो हम जाननके स्वरूपका परिचय पा सकते हैं। यद्यपि कोई भी अमूर्त पदार्थ हमारे देखनेमें नहीं आ रहा, हम उसको स्पष्ट जान भी नहीं सकते। लेकिन ये अमूर्त पदार्थ चूँकि ये स्वयं ही हैं इसलिए स्वयं जाननेमें आ सकते हैं। हम घर्म, अधर्म, आकाश काल द्रव्यको नहीं जान सकते हैं। वे अमूर्त हैं। उसके विषयमें हम चिन्तन करते हैं, आगमके अनुसार, यृत्क्योंके अनुपार। अन्य अमूर्त पदार्थ स्पष्ट सम्बन्धमें आ जाय अपने अनुभवमें आये कि यह है, ऐसा तो नहीं होता तो उन्हीं पदार्थोंकी भाँति अमूर्त मैं भी हूँ। आकाशकी भाँति अमूर्तिक मैं भी हूँ लेकिन मैं चेतन हूँ और स्वयंपर सब बातें बीतती हैं इस कारणसे मैं अपने अन्दरकी बातोंको तत्त्वको, गुरुणोंको, अवगुणोंको, स्वरूपको चेतन करते हैं उसका परिज्ञान कर सकते हैं।

स्वके ज्ञानमात्र अनुभवनकी आदेयता—हम सामाधिकमें श्रविकतर हम और ध्यान दें कि अपने चित्तको अपने आपमें मग्न करदें, वरके विचारोंको, विकल्पोंको अन्य किन्हीं पदार्थोंको ध्यानमें न लायें। कोशिश करें ऐसी कि जो बाह्य पदार्थ ज्ञानमें आते हैं उनको न आने दें। अगरे उपयोगको बदल दें, किसी भी परततत्त्वको ध्यानमें न लायें, आते हैं ध्यानमें तो झट वहाँ ही बातें करें। तुमसे मेरा क्या भला होनेका है। तुम क्या मेरे साथी हो सकते हो? तुमसे मेरा क्या हित सम्भव है? भत परेशान करो। मेरे दिलसे निकलकर विराम लो। तो परका विकल्प तोड़कर विश्वास से बैठने का यत्न करें और अपने अन्दर ऐसा निरखनेका भाव बनायें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। केवल ज्ञानस्वरूप ज्ञानमात्र और ऐसी स्थितिमें लगेगा ऐसा कि कुछ मंद मंदसा उजेला है, एक सामान्य प्रकाश है, चेतनतोको लिए हुए है। कुछ उसमें प्रतिभास तो है, वह प्रतिभासस्वरूप है, उसमें दूसरेका प्रतिभास नहीं आ रहा, मगर खुद प्रतिभास स्वरूप है, ऐसा एक सामान्यतया ज्ञानप्रकाश ज्ञानमें लेनेका यत्न करें। यह यत्न हो सका तो समझिये कि दुर्लभ मानव जीवन सफल कर लिया, यह अनुभव न बन सका तो हमने वह कुञ्जी नहीं प्राप्त कर पाई, जिसके प्रतापसे संसारके संकट सदाके लिए मिट सकते हैं। अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करनेके यत्नमें लगाना चाहिये और बाहरी बातें—कुछ योद्धासा नुकसान हो गया तो क्या हो गया? बनका नुकसान हो गया या कोई सम्मान—अपमान सम्बन्धी नुकसान हो गया तो ये तो तुच्छ बातें हैं। ये कोई

महस्त्वपूर्ण बातें नहीं हैं। हो गया तो हो गया। महस्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हम जितने समय अपनेको ज्ञानप्रकाशमात्र अनुभव कर सके उतना हमने लाभ पाया और इसी स्वरूपसे चिंगकर बाह्यकी ओर चिंचकर हम कुछ भी श्रम कर डालें दुनियाको दिख भी जाय कि बड़ा श्रम किया, इसने बड़ा उपकार किया, यह बड़ा कर्मठ है। लेकिन उन बातोंसे, उन दिलावटोंसे आत्माको कुछ लाभ नहीं होनेका। आत्माका लाभ तो बस इसीमें है कि अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव किया जाय।

विशुद्ध ज्ञानका प्रसाद—स्वयमें विराजा हुआ वह परमात्मनत्व जो शक्ति रूपसे है उसकी फलक होगी, उससे भेंट होगी और उस समय जो एक अलौकिक आनन्द प्रकट होगा वस उस अनुभवके बाद फिर जगतके असार विषय न रखेंगे। जब तक निज सहज आनन्दकी अनुभूति न होगी तब तक बहुत कोशिश करे कोई कि मैं विषयोंसे विरक्त हो जाऊ विषयोंमें हमारी रुचि न रहे, पर मूलतः रुचि हटती नहीं। और, कभी हट भी जाय तो वह एक मनके विषयकी रुचि बढ़ाकर हटती है। तब लोकमें प्रशंसा लूटना, इस ओर दृष्टि जाती है। जब तक अनेको ज्ञानमात्र अनुभव करनेके प्रसादसे उत्पन्न हुए आनन्दका अनुभव नहीं प्राप्त होता। तब तक वास्तविक मायनेमें विषयोंसे रुचि नहीं हुट पाती। तो क्या चोज प्राप्त करना है, ज्ञानमात्र अनुभव करना है, इसके लिये हमें तत्त्वज्ञान चाहिए। तत्त्वज्ञानका उपाय है स्थाद्वाद। सर्वप्रथम स्थाद्वादसे ही हमें निर्णय प्राप्त होता है। निर्णय पानेके बाद फिर उसका जो अवकल्पनरूप है, वस्तुस्वरूपका जब उसके दर्शन हो जाते हैं तो उस अवकल्प्य निज तत्वमें प्रवेश कर जावे, जिसमें सम्पूर्ण एकांत भी छूट जाते। समस्त विकल्प छूट जाते, प्रमाण, नय, निषेपकी कल्पनायें भी छूट जाती। जब एक अभेद हो गया उन तत्वसे जो इस निर्णयसे प्राप्त किया जाता जो कि उद्देश्यमें था तो फिर सर्व विकल्प छोड़कर आत्मलीन होनेकी बातमें क्या सन्देह रहता है। तो स्थाद्वादसे निर्णय होता, निरण्यके बाद यह बुद्धि उत्पन्न होती कि यह हेण तत्व है, इसमें न लगना, यह आदेय तत्व है, इसमें अपनेको लगाना और उस आदेय तत्वमें आदरके प्रतापसे फिर उस भव्यके जो अन्तःप्रकाश पैदा होता है, उससे समाधि बनती है, निविकल्प समाविष्ट अन्तमुर्द्धुत उत्कृष्ट रूपसे हो तो फिर वहीं कैवल्य प्राप्त होता है। उस ही परम विशुद्ध ज्ञानकी उत्तरितिका नाम मोक्ष है।

गुणोच्छेदवादियोंद्वारा परमात्मलयकी मोक्षस्वरूपताके निराकरणका उद्योगारम्भ—ब्रह्म यहीं विशेषवादी जिनके मोक्षका स्वरूप यह है कि आत्मामेंसे ज्ञान सुख दुःख इच्छा आदिक सब नष्ट हो जायें आत्मा केवल एक चित्तस्वरूप रहे, उसमें कोई प्रदृष्टि न रहे, परिणामन न हो औरपांचक बातें न हों तो उसका नाम मोक्ष है अर्थात् ज्ञानरहित आत्माकी अवक्षयाका नाम मोक्ष है, ऐसा मोक्षस्वरूप मानने वाले वैशेषिक पुनः कहते हैं कि मोक्ष तो गुणोच्छेदनका ही नाम ही सकता है। आत्मा

कोई एक ज्ञानात्मक नहीं, जो उस ज्ञानात्मक आत्माके विकासका नाम मोक्ष कहा जाय। जो एक सिद्धान्त यह मानता है कि आत्मामें जब एकत्रका ज्ञान होता है, जब परमात्मामें लय होता है उस हीका नाम मोक्ष है, यह असङ्गत है।

**ब्रह्माद्वैतवादमें मोक्षका स्वरूप—ब्रह्माद्वैतसिद्धान्तमें एक ब्रह्म ही तत्त्व है, उस ब्रह्मतत्त्वका परिज्ञान जब नहीं होता तो यह जीव संसारमें रुलता है। तथा जब यह जानता है कि मेरी सत्ता अलगसे कुछ नहीं है उस ही ब्रह्मस्वरूपका मुभार प्रकाश पड़ता है तब मेरी सत्ता होती है। मेरी सत्ता अलग नहीं है, ऐसा जानकर अहंकार छोड़ देता है तब परमात्मामें लीनता होती है, यही मोक्ष है। जब तक यह जीव अपनी सत्ता न्यारी समझता है कि मैं स्वतंत्र सद्गूत हूँ तो इसे अहंकार जगता है। जब यह जान लेता कि मेरी सत्ता नहीं है अलगसे, ब्रह्मका ही प्रकाश भुक्तार आता है तब मैं कुछ चेष्टावान हुआ करता हूँ ज्ञानवान हुआ करता हूँ। मैं तो अलग कुछ बस्तु नहीं यों एक आत्माके एकत्रको जब जान जाता है कि लोकमें सर्वत्र केवल एक ही ब्रह्म है, दूसरा कुछ नहीं है तो ब्रह्मके एकत्रको जाननेके बाद अपने आपमें उस ब्रह्मस्वरूपपर न्योछावर कर देता है। उसमें लीन हो जाता है तब इसका मोक्ष कहलाता है।**

**भेदप्रतिषेधपूर्वक आत्माके सर्वेकत्व पर प्रश्नोत्तर—ब्रह्माद्वैतवादके विरोध में वैशेषिक कह रहे हैं कि आत्माके एकत्रका ज्ञान ही मिथ्यारूप है। कौसे हैं आत्मा एक? आत्मा अनन्त है और गुण भी अनन्त हैं। कर्म भी अनन्त हैं। सामाज्य विशेष समवाय ये एक एक हैं। अभाव भी अलग पदार्थ हैं इस प्रकार पदार्थोंकी व्यवस्था है। आत्मा एक है ही नहीं। फिर उसका एकत्व मानना, कल्पनायें करना जबरदस्ती कि सारे लोकमें एक आत्मा ही आत्मा आया है यह तो मिथ्यारूप है, वह मोक्षका लाभक नहीं हो सकता। ब्रह्माद्वैतवादी कहता कि नहीं। आत्मा ही एक वास्तविक सत् है उसके सिवाय अन्य भेदमें प्रभाग काम नहीं करता, ये सब भेद कल्पनासे हो गए हैं। प्रत्यक्ष तो पदार्थ निरखना भेदको नहीं। अज्ञानसे ये सब न्यारे-न्यारे पदार्थ माने हुए हैं। जो ज्ञान होता है कि आत्मा अनन्त है। जो जो भी ज्ञान किए जा रहे हैं ये सब कल्पनासे किए जा रहे हैं क्योंकि प्रत्यक्ष तो विधिको, एकको विषय करता है। प्रत्यक्ष चीजको विषय करता है। ये ५ पदार्थ रखे हैं ऐसा जो ५ का जानना है और इससे इतनी दूर दूर रखे हैं, ये एक दूसरेसे न्यारे-न्यारे हैं, इनको प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं जाना करता, इन्हें तो कल्पना जानती है, जिसे स्थाद्वादी लोग भी कहते हैं कि यह श्रुतज्ञानका विषय है, मति ज्ञानका विषय होती है। ये पदार्थ इतने हैं, ये पदार्थ ऐसे-ऐसे भेद वाले हैं, ये सब भेद श्रुतज्ञानसे जाने जाते हैं। सो प्रत्यक्ष तो केवल विधिको जानता है। तो प्रत्यक्षसे तो आत्मा जान लिया जायगा भगव इतने पदार्थ हैं, न्यारे-न्यारे यह प्रत्यक्षसे नहीं जाना जा सकता।**

आत्माके एकत्रिका यथार्थरूप और आत्मस्वरूपकी एकत्रि कल्पनातीतता - अब ब्रह्मद्वैत और वैशेषिकके परस्पर वादविवादके पश्चात् स्याद्वादी कहता है कि यह कहना ठीक है - आत्माके एकत्रिका ज्ञान होनेसे परमात्मवृण्डमें लय होता है । लेकिन आत्माका एकत्रि क्या है ? सर्व लोकमें केवल एक ही आत्मा है । यह एकत्रि नहीं कहलाता । किन्तु प्रत्येक आत्मामें जो स्वरूप बसा हुआ है वह स्वरूप सब का समान है वह स्वरूप एक है, यह नहीं कि मेरे आत्माका स्वरूप और तरहका है । प्राण्य आत्माओंका स्वरूप और तरहका है । तो उनका जो स्वरूप है चैतन्यमात्र, उस एकको जान लिया जाय, तब परमात्मस्वरूपका लय होता है । उस चैतन्यस्वरूपको न हम एक कह सकते न अनेक कह सकते, क्योंकि जहाँ एक कहेंगे वहाँ भी एक व्यक्ति बन जायगा वह स्वरूप । चैतन्यस्वरूप एक है । तो कितना बड़ा है या तो सर्वलोक व्यापी है या एक देहमें विचार इतना है या कुछ भी करना करो । उस चैतन्य-स्वरूपके बारेमें आगर हम एक भी कहते हैं तो भी उसके प्रयोगको, सीमायेद व्यक्तिपना बन जाता है । चैतन्यस्वरूपको हम अनेक कहते हैं तब तो स्पष्ट ही व्यक्तिराना आजाता है । चैतन्यस्वरूपका अनुभव संख्या, आकार आदिक विकल्पसे नहीं हो सकता । वह चित्तस्वरूप मात्र है, न एक है न अनेक । जैसे यह चित्तस्वरूप परपदार्थोंसे निराला है, रागादिक भावोंसे न्यारा है उन रूप में नहीं हूँ ऐसे ही आत्मामें उत्पन्न होने वाले मतिज्ञान आदिक छुप्तुरुप ज्ञान भी यह मैं नहीं हूँ मैं चित्तस्वरूप हूँ । कर्मजयसे उत्पन्न हुए केवल ज्ञानरूप व्यक्तियाँ भी मैं नहीं हूँ । मैं शाश्वत हूँ ये तो कभीसे प्रकट होते हैं । ऐसा और आगे भी यदि यह विचारा जाय कि चलो मैं केवल ज्ञानरूप भी नहीं मानता, मतिज्ञानादिक रूप तो हूँ ही नहीं, रागादिक रूप हूँ ही नहीं । परपदार्थों रूप हूँ ही नहीं, किन्तु मैं चित्तस्वरूप तो हूँ । आचार्य संतजन स्पष्ट कहते हैं कि जब तक एकपनेका संकल्प रहेगा कि मैं एक चित्तस्वरूप हूँ तो एकत्रिका संरूप भी हमें उस चिदनुभूतिमें बाधक ही बनेगा । वह तो विकल्प जालोंसे रहित केवल वह तो वही है । ऐसे उस चैतन्यस्वरूपका दृढ़तम बोध होनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है । इसमें किसी भी प्रकारका विवाद नहीं है ।

सहज विश्राममें सहजस्वरूपका उद्भोधन - भैया ! अपनेको जानना चाहिए । यदि कोई पुरुष ऐसा साहस बनायें कि मुझे तो किसीकी नहीं सुनता, किसी की नहीं मानता । घर्में का नामपर भी कोई ऋषि अपनी गाते हैं कोई अपनी गाते हैं, तो एक बार हमें किसीकी भी बात न सुनकर अपने आपका निर्णय करना चाहिए कि मैं क्या हूँ । बड़ी ईमानदारीसे करें किसीका भी पक्ष न रखकर, परका विकल्प हटाकर कि मैं परको अपनेमें स्थान न देकर यदि विश्रामसे बैठें तो वह अपनेमें अनुभव कर सकता है । ये पशु पक्षी ऋषि संतोंकी बातें कहाँ सुनते हैं, उनका कहाँ अर्थ जानते हैं । उनको जो भी अनुभव होता है वह किसके बलपर होता है । निष्पक्ष ही तो उनका विश्राम होता है उस ही विश्रामके बलसे उनके अनुभूति जगती है फिर

उसके बाद ये साधक स्वयं जानेगे कि किन संतों की वाणी कितनी चित्तवृणकी अनुभूति कराने वाली है स्वयं समझ जायेगे। तो हमें हर प्रकारसे आगम पढ़कर कृष्ण संतोंकी वाणी सुनकर कोशिश यह करना है कि हम आतेको अनुभव करें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। केवल ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसी एक धुनें बनायें, और कुछ न रुचे। गुप्त ही गुप्त। किसीको कुछ दिखाना नहीं, किसीमें कुछ बनना नहीं। मैं किसीके लिए कुछ हूँ ही नहीं। दुर्नियाके लिए मेरी मत्ता नहीं आतेमें ही आते ही सहज जान्मायको जानूँ और अनुभव करता रहूँ ऐसी ज्ञानमात्र अनुभवनेकी हरारी धुन बने तो इसने हम आता जीवन सफल कर सकते हैं और जन्ममरणकी यह परमारा मिट सकती है, साथके संकटोंसे सदके छुटकारा रखना ही सकता है।

**शब्दाद्वैतावगमकी मोक्षोपायताका निराकरण**—एक शब्दाद्वैतावदका सिद्धान्त है जो यह मानता है कि ज्ञानमें सब कुछ शब्द ही शब्द है। शब्दमय सारा विश्व है और ऐसा समझनेकी पुकियाँ हैं कि देवो ना जैसे कि लोग कहते हैं कि सब कुछ ज्ञान ही ज्ञान है। ज्ञानके सिद्धान्त और कुछ नहीं। जैसे ज्ञानमें आया कि यह महल, यह चीज़ी, यह मनुष्य आदि तो ये सब हैं नहीं, केवल विचार है कलानी है, ज्ञानसे यह मातृप पड़ना है। जैसे स्वप्नमें सभी चीज़ें जो भी दिखती हैं वे सत्य मातृप होती हैं पर वे कुछ भी सत्य नहीं हैं। वहाँ तो केवल ज्ञान ही ज्ञान है इसी प्रकार यह विश्व जो दिख रहा है, यह कुछ नहीं है केवल ज्ञान ही ज्ञान है। तो जैसे ज्ञानाद्वैतवादी सारे विश्वको ज्ञान ही ज्ञान मानते हैं; जरा अब निरखे तो सही कि ज्ञान जो यहाँ उत्तरान्न होता है वह शब्दसे बीचा हुआ ही उत्तरान्न होता है। कोई ज्ञान ऐसा समझ में नहीं आता; कि उसके साथ शब्द न हो। जैसे हम आप किसी भी चीज़को जानते हैं तो जाननेके साथ ही उसके नाम रहा आदिका कुछ भीतरमें अन्तर्जल होता है, तो सारे ज्ञान शब्दोंसे बीचे हुए हैं इसलिए जगत शब्दमय है और इस तरहका ज्ञान ही जाय तो मोक्ष ही जायगा। इसके समाधानमें संक्षेपमें ही समझ लीजिये कि यह सारा जगत केवल शब्दमय है, इसकी सिद्ध नहीं है। कदंचित् जबरदस्ती ऐसा मान भी लिया जाय तो वैना जान लेनेसे आत्मामें प्रभाव क्या पड़ा कि जिससे मोक्ष हो गया। तो शब्दाद्वैत कोई परमार्थ तत्त्व ही नहीं है और फिर मोक्षका साधक बताना, इसका तो कोई सम्बन्ध ही नहीं बैठता है।

**मोक्षोपाय व मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें प्रकृतिवादका मन्तव्य**—ग्रन्थ मोक्षोपाय व मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें प्रकृतिवादी कहते हैं कि प्रकृति और पुरुषमें भेद की उपलब्धि होना यही मोक्षका कारण है और मोक्ष भी क्या है। चैतन्यमात्र स्वरूप में अवस्थित रह जाना इसका नाम मोक्ष है। यहाँ इतना सक्षममें जान लीजिये कि छिकुडियामायने मुझीस्त्रुत्रुक्ति, अचेतन, पुरुष मानसे आत्मा। अत्या और अचेतन प्रकृति में भेदोंकीविज्ञानहोसेहैं, मोक्ष हैसेहैं, तो क्या होता है उसका स्वरूप भी क्या

है ? चैतन्यमात्र स्वरूपमें आत्मा रह गया । विवरण कर रहे हैं वे स्वयं कि प्रधान जितनी प्रवृत्ति करता है वह पुरुषके प्रयोजनका सम्पादन करनेके लिए करता है पुरुष का काम बने आत्मापर यह प्रधान बड़ा मेहरबान है इसीसे मानो इस प्रकृतितत्वका प्रधान नाम पड़ा है । अब भहिले प्रकृति और पुरुषका संक्षिप्त स्वरूप जानो । पुरुषके मायने है आत्मा केवल चैतन्यस्वरूप और प्रकृतिके मायने हैं एक ऐसा अचेतन तत्व जिसका यह सारा ठाठबाट है । उस प्रकृतिसे ही ज्ञान, इंद्रिय, शरीर, अहंकार आदिक उत्तर छोटे हैं । पुरुष तो, आत्मा तो केवल चित्तस्वरूप मात्र है और यह प्रकृते प्रधान है जो कि ये सब खटगटे करता है । यह प्रधान पुरुषको खुश करनेके लिए काम किया करता है । तो प्रकृतिका सारा काम पुरुषके प्रयोजनके लिए है और वह पुरुषका प्रयोजन अथवा पुरुषार्थ — पुरुषार्थ शब्दका अर्थ है पुरुषका अर्थ, पुरुषका प्रयोजन । वह दो प्रकारका है । शब्दादिक विषयोंकी उपलब्धि हो जाना, जैसे वर्तमानमें रूप, रस, गंध, स्वरं आदिक भोगना । देखिए यह प्रधान बड़ा उपकारी है इस आत्माको हर प्रकारसे उपकार करना चाहिए, इस प्रधानने मानों यही ब्रत ले रखा है । जब यह पुरुष भोग सेवनमें राजी है तो भोगसाधन भी यह प्रधान संपादित है । तो एक पुरुषार्थ है शब्दादिक विषयोंकी उपलब्धि हो जाना और दूसरा है पुरुष और प्रकृतेको विवेक हो जाना । इस दूसरे पुरुषार्थसे आत्माको मोक्ष होता है । तो पुरुषमें व प्रधानमें विवेक पैदा हो जाय, कर्ममें व आत्मामें, प्रकृतिमें व चैतन्यमें विवेक आ जाय थहर्मी प्रधान संपादित करता है । तो प्रधानके द्वारा किए गए दो पुरुषार्थ हैं — एक तरह भोग विषयोंके साधनोंकी उपलब्धि कराना और दूसरे — पुरुष और प्रकृतिमें विवेक उत्तर कराना । जब प्रकृति और पुरुषमें विवेक उत्तर हो जाता है यह प्रकृति हमेही आत्मा है ऐसा भेद विज्ञान हो जाता है तो इप पुरुषार्थके सम्पन्न होनेपर फिर थहर्मी प्रधान शरीरका सम्पादन नहीं करता है, इसीका नाम मोक्ष है ।

मुक्तके प्रति प्रकृतिके अनुपसर्पणके कारणका प्रकृतिवादमें कथन— जब आत्माने यह समझ लिया कि यह प्रधान तो बड़ा दुष्ट था, यह प्रकृति उपरोक्त खोटे स्वभावकी थी इसने तो जन्ममरण कराया, दुःखोंमें रखा तो फिर यहाँ प्रकृति कि इस आत्माने तो मुझे दुष्टस्वरूपसे परख लिया है कि यह मैं प्रकृति दुष्ट हूँ, लें तिन्हीं यह प्रधान अर्थात् प्रकृति उस पुरुष अर्थात् आत्माके पास नहीं फटकती, अर्थात् आत्माके पास नहीं जाता, न आत्माके लिए शरीर सम्पादन करता है । इस विषये आत्मा का मोक्ष होता है । प्रकृतिवादी कह रहे हैं — आच्चा, देखिये समयसारमें भौतिकी है कि प्रकृति चेतन्यताके लिए, आत्माके लिए उत्तर होता है और नष्ट होता है तो उपरोक्त भी तो यही बात आयी ना । प्रकृतिके उत्पन्न होनेके मायने क्या कि यह प्रकृति उपरोक्त साधन शब्दादिक विषयोंके रूपमें परिणाम जाय ताहि यह आत्मा राजी रहे तिन्हीं आनन्द प्राप्त हो । तो पुरुषके प्रयोजनके लिए ही यह प्रकृति उत्तर हुई ना, और जब यह प्रकृति नष्ट होती है तो भी आत्माके लिए नष्ट होती है अर्थात् इस प्रकृतिने इस

आत्माको भेदविज्ञान करा दिया, प्रकृति और पुरुषमें विवेच करा दिया । विवेच करने से अब यह आत्मा स्वतन्त्र हो गया और मुक्त हो गया । प्रधान तो नष्ट हो गया । नष्ट हो जावे पर उसकी तो यह आदत है कि सब काम पुरुषके लिए करे । तो प्रकृति पुरुषके लिए उत्तर छोटी है और पुरुषके लिए नष्ट होती है, इन तरहसे इस प्रधान द्वारा जब प्रकृति और पुरुषका विवेचनोपलम्ब हो जाता है तब आत्माका मोक्ष होता है और वह मोक्ष इस ही स्वरूप है कि आत्मा अपने चैतन्य स्वरूपमात्रमें प्रतिष्ठित रह गया, अब ज्ञानका कोई काम नहीं रहा ।

प्रकृतिका असत्त्व होनेसे प्रकृतिपुरुषविवेचोपलम्बके मोक्षकारणत्वकी सिद्धिका अभाव —उक्त मोक्षोगाय व मोक्षःवर्णके संबन्धमें अब समाचार देते हैं कि पहिले तो प्रधान ही कुछ है सर्, यह बात नहीं सिद्ध होती है । प्रधान असत् है । लोकमें केवल ६ जातिके ही तो ०८ धर्म हैं —जीव, युद्धाल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । प्रधान क्या कोज हुआ ? जितने कार्य होते हैं वे अपने अनुकूल उपादानसे ही उत्तर हो सकते हैं । यहाँ कितने परसार विशुद्ध कार्य ज्ञात हो रहे हैं, कोई ज्ञानादिक है तो कोई रूप रस आदिक कार्य है और कोई रूप रस अदिक कार्य है तो कोई इन्द्रिय-कार्य है । और गति हेतुव स्थिति हेतुव परिणाम हेतु व आदिकी ओर तो दृष्टि ही नहीं गई । तो जितने कार्य हो रहे हैं वे कार्य अपने अवशिष्ट द्रव्यके अनुसार हो रहे हैं । प्रधान कोई श्रलग्नसे तत्त्व नहीं है । अयमा मान भी लो कि प्रकृति कोई है तत्त्व प्रकृतिका अर्थ जरा जल्दी समझनेके लिए कर्म मान लीजिए । जिन कर्मोंके उदयके निमित्तसे ये जारी, इन्द्रिय आदिक मिलते हैं कर्मान्तरोंका ज्ञायो तथा होनेर आत्मामें ये ज्ञान होते हैं । नो यह विश्वकी ऐ चहल पहल इस प्रकृतिकी है, आत्माकी नहीं है । यों प्रकृतिका स्वरूप माना गया है ।

पुरुषस्थ निमित्तकी अपेक्षा बिना प्रकृतिकार्य माननेपर मुक्तमें भी देहसम्पर्कका प्रमङ्ग मान भी लो प्रकृति कोई तत्त्व है तो अब यह बनावो कि यह प्रकृति जो सारे काम किया करती है शरीर, इन्द्रिय ज्ञान आदिक उत्पन्न करनेके तो ये सब काम पुरुषमें होने वाले किसी निमित्तकी अपेक्षा करके यह प्रकृति करती है या आत्माका निमित्त पाये बिना ही यह प्रकृति काम करती है ? ये दो विकल्प रखे गए । यदि कहो कि आत्माके किसी निमित्तकी अपेक्षा किए बिना ही यह प्रधान स्वतन्त्रतासे अपने बनाए सारे इन जा॒ जात्रोंको, शरीर सम्पादनको, समस्त कार्योंको किया करता है तब फिर मुक्त आत्माओंमें भी शरीर सम्पादन कर दे । जब आत्माकी अपेक्षा बिना ये प्रकृति शरीर बनादे, भोग बनादे, इन्द्रिय बनादे, ज्ञान बनादे तो अपेक्षा प्रधान स्वतंत्र कार्य करे, मुक्तोंके भी शरीर लगा दे ।

अं अपेक्षा रखकर भी प्रकृतिका कार्य होना माननेपर मुक्तमें प्रकृति

कार्यत्वका प्रसङ्ग—यदि कहो कि प्रकृतिने अपेक्षा रखकर काम किया तो क्या विवेकानुपलभका अपेक्षा रखकर प्रधान कार्य करता है या अदृष्टकी अपेक्षा रखकर प्रधान तत्व ( प्रकृति ) कार्य करता है ? मतलब यह है कि जब विवेक नहीं पाया गया आत्मामें कि प्रकृति अनग तत्व है और आत्मा अनग तत्व है, तो प्रधानने शरीर जुटा दिया गया, ऐसी अपेक्षा रखकर प्रकृति शरीर जुटाती है या अदृष्टकी अपेक्षा रखकर प्रधानने शरीर जुटा दिया । जैसा अट्टट जिसके साथ लगा हुआ है उसे यह प्रकृति शरीर इदिय, भोग, ज्ञान आदिक बैंधा ही जुटाती है । यदि कहो कि विवेक को अनुपलब्ध होनेसे प्रकृति शरीरका सम्पादन करती है तो विवेककी अनुपलब्ध तो मुक्त जीवोंमें भी है । देखिए—जैसे भव्यत्वका अभाव सिद्ध जीवोंमें भी है और सप्ताहके ठेकेदारोंमें भी है तो हमी प्रकार विवेकका अभाव विवेककी अनुपत्ति रूपसे है और मुक्त आत्माओंमें विवेकोपलब्धिका अभाव विवेकरूपसे है, इसमें विवेकका उपालम्भ था पहिले । जब यह ज्ञानी योगी दुश्च कुछ साधनमें हुआ तो इसकी विवेकोपलब्धि थी किर मुक्त होनेपर कैदर हुआ, विवेकोपलब्धि नष्ट हुई । सो विवेककी अनुपलब्धि संसारी जीवोंमें है और मुक्त जीवोंमें भी विवेकानुपलभग है । फिर प्रकृति मुक्त जीवोंमें भी शरीर समादान करदे, यह आपत्ति आती है । यदि कहो कि अट्टटकी अपेक्षा रखकर यह प्रकृति जीवोंको शरीर चिपकाया करती है तो किर मुक्त आत्माओंमें भी शरीर लगा देना चाहिए, क्योंकि प्रकृतिमें शक्तिरूप अट्टट भी व्यवस्थित है ।

दुष्टतया विज्ञान होनेपर भी अचेतन प्रकृतिके कार्यके निरोधकी अशक्यता - अब इस बातपर विचार करते हैं जो यह कथा था कि इस पुरुषने जब यह जाज लिया कि यह प्रकृति दुष्ट है तो दुष्टरूपसे जानी यह प्रकृति, इसके इतना बल नहीं होता कि पुरुषके पास चिपके । जैस कई दुष्टिनी कुष्टिनी स्त्री है, वह ऊर से ठीक ठाक जचती थी और उसरार कोई पुरुष आसक्त हो गया था, उसके उस स्नेह में कुछ दिन रहनेके बाद जब उसे पता पड़ा कि यह तो अनेक अङ्गोंसे कुष्टिनी है, यह दुष्टिनी है, ठीक नहीं है, बुरी है । तो बुरी है, ऐसा जब जान लिया उस स्त्रीने कि हमारी इस बातको इस पुरुषने समझ लिया है तो फिर उस स्त्रीकी हिम्मत उस पुरुषके पास जानेके लिए नहीं पड़ती । इसी प्रकार इस प्रकृतिने जब आत्माको जान लिया कि यह दुष्ट है प्रधान, कर्म । तो जब जान लिया कि प्रकृति दुष्ट है तो ये प्रकृति, कर्म आव हिम्मत नहीं कर पाते उस आत्मके पास जानेके लिए, शरीर और भोग जोड़नेके लिए, क्योंकि इसने जान लिया कि मैं दुष्ट हूँ तो यह प्रकृति जरा शर्म बाली है तो उस पुरुषके पास नहीं जा सकती है । यह कहना भी तुम्हारा अनुकूल है, क्योंकि प्रकृति तो अचेतन मानी गयी, और अचेतनमें यह ज्ञान कैसे सम्भव हो जायगा कि मैं इस पुरुषके द्वारा दुष्टरूपसे जान ली गई हूँ । इस आत्माने मुझे बुरा जान लिया है कि यह दुष्ट है, इसकी प्रकृति खराब है । यह ज्ञान प्रकृतिमें सम्भव

नहीं है। तब ज्ञान उत्पन्न न हो सकनेसे यह प्रकृति सबके लिए समान है तब भी मुक्त जीवोंमें लगता चाहिए क्योंकि जान जाय कोई तो वह तो दब जायेगा। इसने समझ लिया कि इसकी प्रकृति ठीक नहीं, दुष्ट है तब किर वह न जाएगी लेकिन प्रकृतिमें तो ज्ञान ही नहीं है।

प्रकृतिका चेतयिताके निमित्त उत्पाद और विनाशका भाव - प्रकृति-वादियोंने जो यह उदाहरण दिया था कि समयसारमें भी तो लिखा है कि “प्रकृति भी चेतनके लिए उत्पन्न होती है विनष्ट होती है।” सो उपालम्ब ठीक नहीं, क्योंकि इसी प्रकार यह भी तो लिखा है कि आत्मा भी प्रकृतिके लिए उत्पन्न होता और विनष्ट होता। तो यही अर्थका अर्थ प्रयोजन नहीं है, किन्तु अर्थका अर्थ निमित्त है। निमित्त शब्दका और प्रयोजन शब्दका कुछ भाव एक समानसा है फिर भी अन्तर है जैसे कोई कहे ना, कि मैं तो इसके अर्थ मिला, मैं तो इसका निमित्त मिला तो अर्थ और निमित्तका कही कही करीब-करीब एकसा अर्थ है लेकिन इसमें भेद है। प्रयोजनका प्रयोग तो जानकार पुरुषोंमें होता है। जैसे अग्निने पनी गरम किया तो क्या यह कह सकेंगे कि अग्निन पानीके प्रयोजनके लिए जल रही है ऐसा कोई प्रयोग नहीं करता प्रयोजन शब्दका प्रयोग चेतनमें होता है और अग्निके निमित्तसे पानी गरम हुआ, ऐसा प्रयोग चलता है। तो आत्मा और प्रकृति [कर्म इन दोनोंका परस्पर] निमित्तमें निमित्तक सम्बन्ध है। यह बात दिलाई गई है कि प्रकृति आत्माका निमित्त पाकर उत्पन्न होती है, विनष्ट होती है और आत्मा प्रकृतिका निमित्त पाकर उत्पन्न होता है याने नवीन-नवीन पर्यायोंमें आता है और विनष्ट होता है याने पूर्व विभावको विलीन करता है अथवा बरवाद होता है। तो यह कहना भी युक्त नहीं है कि “प्रकृतिने आत्माको भेद विज्ञान कराया और भेदविज्ञान करानेके बाद जब यह प्रकृति जान लेती है कि आत्मा का मौका समझ लिया तो यह शांत हो जाती है, उसे शरीर सम्पादन नहीं करती, अतः प्रकृति और पुरुषके बीचमें अन्तर दिखा देनेका उपाय मोक्ष है यह बात घटित नहीं होती।

विवेकोपलम्बके पश्चात् भी सदेहस्थितिकी संभवता—फिर भी मान लो भेदविज्ञान हो गया और भेदविज्ञानकी पराकाला भी जिस जीवमें हो, सम्यग्दृष्टि जन हो, साधुजन हो, तो भेदविज्ञानकी पराकाला अग्नी हो गयी फिर वह भी अभी शरीरके साथ रह रहा है। तो भेदविज्ञान मोक्षका कारण नहीं हुआ। भेदविज्ञान होने के बाद उसका आचरण होवे, भली प्रकार अवस्थित रह जाय कि किसी भी विभावकी तरङ्गमें न आये ऐसी अवस्था प्राप्त हो तब मोक्ष होता है। तो उसका अर्थ यह हुआ कि सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान और सम्यकचारित्रकी पूर्णतासे मोक्ष होता है। न कि भेदविज्ञानमात्रसे।

गुणोच्छेदकी मोक्षस्वरूपतापर विचार—यहाँ मोक्षस्वरूपके प्रकरणमें

सभी दार्शनिकोंकी बात रखी एक उस मोक्षस्वरूपको तो सबने चाहा, जो एक सङ्केतों से लुटकारा रहा है। मोक्षका सीधा अर्थ है सङ्केतोंसे लुटकारा पाना। तो यह तो सभी दाशानेमोंको इष्ट है। सङ्केतोंसे लुटकारा पानेका नाम मोक्ष है पर उस मोक्षके स्वरूपमें और मोक्षके उत्तरायोंमें जो उसकी चर्चायें हैं वे कोई तो मूलमें सत्यार्थकी निकट चर्चायें थीं और फिर अनेक दशाओंके शास्त्र जब रचे गए उत्तरोत्तर तो धीरे-धीरे फिर उनमें एक-तीन लीटूट और बड़ा जानेके फिर जा विशेष विद्वान्मतिरासी होगए। मान लीजिए वैशेषिक मानता है कि आत्मामें ज्ञान-दिक गुणोंका उच्छेद हो जाना इसका नाम मोक्ष है तो कौनसी त्रुटी बात कह दी ? जब जो हमारे परिवर्त जान हैं, उनको ही जान जान जय तब जोई भी विरोध ही बात नहीं है। जो जानो विशेष ज्ञान है, विशेष रूप ज्ञान है उनका उच्छेद पौराणमें हो ही जाता है तो विशेषता थी कभी, लेकिन उस मानविक शास्त्रावादके इद बब उनके कानून के, जब विशेष ही गए वे दर्शन तब अन्तर आया। निकट दुर दिना दिनाली पइ दुर्दुर उत्तर दुर्दुर होगी वे कुछ निकट थे।

आनन्दाभिव्यक्ति और विशुद्धज्ञानोत्तरति की मोक्षस्वरूपताका विचार जिसने माना कि मोक्षका स्वरूप अनन्द है और आनन्दगुणकी जो अभिव्यक्ति है उस का नाम मोक्ष है, आनन्दरूप आत्मा है इसमें कौनसे विरोधकी बात है। आत्मा आनन्दस्वरूप है ही ही और उस आनन्दकी अभिव्यक्तिका नाम मोक्ष है, लेकिन यह दर्शन निवद्ध होनेसे पहले जित किसी भी कृत्य संतके वितरमें यह बात आयी थी वे निकट थे। जब हनका निवंशन हुआ, तब एकान्त आया। आत्मा तो आनन्दमात्र है और वह आरिणामी है, उसमें कोई वरज्जन नहीं उकाकोई परिवर्तन नहीं। उकाकोई भोग नहीं, अनुभव नहीं, बफ आनन्द स्वरूप है। स्वरूप भी ग्रन देखिये—जिन दार्शनिकोंने माना कि विशुद्ध ज्ञानकी उत्तरति न तभ मोक्ष है उनमें कौनसा विरोध है ? अगुद्धा मिठ गई रामादिन दूर हो गए, अब मात्र ज्ञान ही ज्ञान रह गया वह मोक्ष है। निकटाथी, किन्तु जब प्रणयन हुआ तो उनमें युक्तियां दिवारी पड़ी और कुछ बनानी पड़ी तो विशुद्ध ज्ञानका स्वरूप यह बन बैठा कि प्रत्येक सत्यमें एक एक ज्ञान पदार्थ उत्तरन होता रहता है। ज्ञानका अत्यथ तहीं है कि उकाका आवारपूर्ण कोई एक आत्मा है। प्रत्येक समर्पण होते वाना जात दूसा एक-एक पदार्थ है। जब इतने ज्ञान सततियोंमें यह ग्रन रहता है कि मैं जो बड़ी हूँ जो बड़िले था। तब इसे संपारमें इलना पड़ता है। जब ज्ञान यह ज्ञान जय कि मैं जो क्षणेक हूँ, एक समर वाना हूँ, मेरा तो यह स्वरूप है, पूर्वाग्रन न कोई सम्बन्ध है न उसकी सत्ता है, तो ऐसा ज्ञान होते पर वह सततिका छेद कर देता है फिर अगे उसकी परम्परा समाप्त हो जाती है तो मोक्ष हुआ। यहां ज्ञानका आवारभूत आत्मउत्तर नहीं माना गया, फिर मोक्षस्वरूप किसका बने।

आरम्भकृतज्ञान और प्रकृतिपुरुषविवेकोपलम्भमें मोक्षकारणताकी

युक्ततापर विचार—आदेतवादका सिद्धान्त है कि आत्माके एकत्वका ज्ञान होनेसे परमात्मस्वरूपमें लय हो जानेका नाम मोक्ष है। इसकी समतामें जैनदर्शनने यह माना कि आत्माके एकत्वका याने कैवल्य स्वरूपका ज्ञान होनेसे निज कारण परमात्ममें जो लोनता होती है उसका नाम मोक्ष है, इसमें कौन सी विश्व बात है? एकत्व विभक्त आत्माका तो उपदेश दिया ही जाता है। आत्मा यह एकत्व जब जाना गया पहिले तब तो निकट होंगे पर प्रणायनके बाद जब अपना सारा युक्तिप्राधन बना लिया गया तो वह एकत्व सब विश्वमें केवल एक है और उसका ज्ञान होना मोक्षका उत्तर है। यहां आत्माको सर्वें मान लिया गया, तब वहीं किसका मोक्ष कराना, किसको संसार होना ये सब बातें आ जाती हैं। प्रकृतिवादीने यह माना कि प्रकृति और पुरुषमें जब विवेक हो जाता है, भेदविज्ञान हो जाता है तब उसे मोक्ष मिलता है। तो भेदविज्ञान विना किसीने जोक्ष पाया क्या? मोक्षके उपायमें मुमुक्षुको सर्वप्रथम द्रव्यकर्म और भावकर्म—आत्मा स्वरूप, चैतन्य इनमें भेद विज्ञान करना हो होता है लेकिन जहाँ प्रकृतिका ही स्वरूप सारे विश्वका आधारभूत कोई एक तत्त्व है जो त्रिगुणात्मक है आदिक समझा गया है वह उपादान निमित्त वाली विविधमें संगत नहीं बैठता है और पुरुषका भी जो स्वरूप बताया गया है, केवल चिन्मात्र ज्ञान भी वहाँ नहीं है, ज्ञान भी प्रकृति का धर्म है तब वहीं बंध मोक्षकी व्यवस्था नहीं बन पाती है। और सब तरहसे विचार करनेपर यह व्यवस्था सिद्ध हुई कि आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है। जब जनादिसे ही विभावोंकी परिणामित होनेके कारण परमें आकर्षण है, परमें दृष्टि उलझी है तो इससे यह जन्म मरणकी परम्परा चल रही है। जब भेदविज्ञान हो और परतत्त्वोंसे हटें, स्व में लगें तो इसकी रागादिक मतिनतायें दूर होंगी और इसके ज्ञानादिक गुणोंका पूर्ण विकास होगा, इसीका नाम मोक्ष है और यही आत्माकी सर्वोक्तुष्ट अवस्था है।

नैयायिकाभिमत मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें वैशेषिकका कथन—अब यहाँ नैयायिक मोक्षका स्वरूप कहते हैं कि मुक्त अवस्थामें आत्मा अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है इसका नाम मोक्ष है। इसके प्रतिपक्षमें विशेषवादी कहते हैं कि यह तो इसका स्वरूप ही है किन्तु वह स्वरूप विशेषगुणसे रहित है। ज्ञानादिक गुणोंसे रहित अपने आत्मामें अवस्थान होता है, चिद्रूपमें अवस्थान होना घटित भी नहीं होता है, क्योंकि चिद्रूपता अनित्य है। चिद्रूपताके मायने बुद्धि। बुद्धि अनित्य होती है। बुद्धिका विनाश होता है इस कारण आत्मा चिद्रूपमें अवस्थित रह ही नहीं सकता मुक्त होनेपर यह भी क्योंकि जो बुद्धिइन्द्रिय आदिकके साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध रखना है, इन्द्रिय प्रकाश आदि सब सामग्री हो तो बुद्धि उत्पन्न होती है, न सामग्री हो तो बुद्धि उत्पन्न नहीं होती। इस प्रकार इन्द्रिय आदिक बाह्य सावनोंसे अन्वय व्यतिरेक रखने वाली बुद्धि नित्य कैसे मानी जा सकती है। तो बुद्धि कहो या चिद्रूपता कहो, दोनों एक ही बात है। तब अनित्य चिद्रूपमें अवस्थित एक तो ही नहीं सकता और ऐसी अनित्य बुद्धि में अवस्थित हो भी तो उसे मोक्ष माना नहीं जा सकता।

आत्मासे चिद्रूपताकी भिन्नता व अभिन्नताके विकल्पोमें विशेषवादी द्वारा यौगाभिमतका निराकरण — अब नैयायिक कहते हैं कि वह तो आत्मस्वरूप है, जो बेतन है, चिद्रूपता है वह आत्मा ॥ स्वरूप है। तो यह बतलावो कि वह आत्मा से भिन्न है कि अभिन्न । जो बुद्धि इन्द्रिय आदिक साधनोंसे हुई हो उसे भी मान लें तो यह बतलावो कि वह बुद्धि चिद्रूपता आत्मासे अभिन्न है या भिन्न है । यदि कहो कि आत्मासे अभिन्न है तो फिर यह पर्यायमात्र हुआ । नाम ही अलग रख दिया । पदार्थ तो एक रहा । चाहे आत्मा कहो चाहे बुद्धि । जब आत्मा और बुद्धि दोनों अभिन्न हो गए तब वहाँ कौन गुण रहा कौन गुणी रहा ? वे तो एक ही रूप हो गए । जो आत्मा सो ही चिद्रूपता । और, ऐसी आत्माको नित्य माना ही है और उससे अभिन्न ऐसे उस चिद्रूपको भी तुमने नित्य माना है उसमें बुद्धि ज्ञान नहीं आ सकता वह तो एक चित् है । यों नमझिये कि कहनं मात्रको है । पर उसमें गुण आये, बुद्धि आये ऐसा आत्माका स्वरूप नहीं है । यदि वह चिद्रूपता आत्मासे अभिन्न है तो वह एक ही बात हो गई । अगर भिन्न है तो आत्मासे भिन्न होनेपर फिर चिद्रूपता आत्माकी क्या रही ? आत्मा नित्य है । जो आत्माका स्वरूप हो सो नित्य होगा । बुद्धि तो अनित्य ही रही । और फिर भेद माननेपर संयोगादिके साथ अनैकांतिक दोष होगा, संयोग आदिक भी नैयायिकोंने आत्मधर्म माना तो आत्मधर्म होनेपर भी नित्य नहीं है तो चिद्रूपता आत्माका धर्म भी मान लो ऐसे भी वह नित्य नहीं हो सकता ।

गुण गुणीका तादात्म्य न बताकर विशेषवादी द्वारा यौगाभिमतका निराकरण — गुण गुणीका तादात्म्य सम्बन्ध नहीं हो सकता । गुण गुणी दोनों अलग-अलग सत् हैं विशेषवादमें । जैसे प्रसिद्ध है ना कि आत्ममें ज्ञान है तो ज्ञान-स्वरूप आत्मा है । ज्ञान है सो आत्मा है । विशेषवाद यह नहीं मानता । आत्माकी जुदी सत्ता है और ज्ञानकी जुदी सत्ता है फिर गुणगुणीका समवाय सम्बन्ध होता है । द्रष्टव्यका संयोग सम्बन्ध होता है तो ये सब व्यवस्थाएं सम्बन्धसे बनती हैं । किन्तु आत्मा गुणीका ज्ञान गुणसे तादात्म्य नहीं है इस कारण आत्मस्वरूपसमवस्थान नहीं बन सकता । सो बुद्धि आदिक विशेष गुणोंके उच्छेदका ही नाम मोक्ष है । यही तत्त्व-ज्ञान है । ऐसा सही ज्ञान उत्पन्न करें कि जहाँ सुख दुःख बुद्धि आदि गुण अवगुण ये सब नष्ट हो जायें, आत्मा केवल एक रह जाए उसका नाम मोक्ष है । विशेषवादियोंने ऐसा नैयायिकोंके मोक्षस्वरूपका निराकरण करते हुए अपना पक्ष रखा ।

यौगाभिमत आत्मस्वरूपसमवस्थानरूप मोक्षस्वरूपकी युक्तता के अयुक्तता—अब उक्त चर्चके समाधानमें कहते हैं कि यह जो कहा गया है कि स्वरूप में, चैतन्यमात्रमें अवस्थान होनेका नाम मोक्ष है । यह बात युक्त भी है अयुक्त भी है । युक्त तो इस प्रकार है कि मोक्ष कहते ही उसे है कि परतत्वोंसे, परभावोंसे उपाधियोंसे छुटकारा हो जाय, केवल अपने चैतन्यमात्र स्वरूपका अनुभवत रहे, चेतनामात्र

रहे, वह युक्त ही बात है और अयुक्त इस कारण है कि चैतन्यमात्रका जो यह अभिप्राय बनता है कि ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि कुछ न रहे, केवल एक जैतन्यमात्र रहे तो ऐसा चैतन्यमात्र कोई स्वरूप नहीं है। मोक्ष होनेर अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप समय जो कि चैतन्य वस्तु हैं उनमें अवस्थायें होती हैं और विशुद्ध ज्ञानपनेका मोक्षपनेका साधन कहा गया है तथा पूर्व विशुद्ध ज्ञानको मोक्षका साधन कहा गया है। कुछ भी सत् हो, सत्में द्रव्यत्वके ही कारण यह गुण है जो प्रतिसमय परिरमण करता ही रहेगा। ऐसी वस्तुकी कलरना करना कि जहाँ परिरमण कुछ भी नहीं होता, यह तो स्थालमात्र है और ऐसा स्थाल करनेमें इस दार्शनिककी कोई मायाचारी या वैदिमानी आदिक नहीं है। उनके कथित उस स्वरूपको सावधानीसे सुनो। जाँ मुक्त अवस्थामें स्वरूप रहता है, सावधानीसे निरखें, चिन्तन करें तो चिन्तन करते-करते यह तो विद्वज्जनोंके विदित ही होता है कि वहाँ विकल्प विभाव तरङ्ग ये कुछ नहीं रहते हैं, तो जहाँ विकल्प विभाव तरङ्ग ये कुछ नहीं है तो क्या है? एक सामान्य प्रतिभास। सो वहाँ यदि कुछ आये तो उससे प्रभुनामें लांछन आ जायगा, एक दैतकी बाधा आ जायगी। इसलिए यह जान भी नहीं है यों अभिमत बन गया। तब फिर वह किसरूप है? वह तो चितृत्व है। जो चित् है सो ही चित् है।

योगाभिमत मोक्षस्वरूपकी युक्तता व अयुक्तताका अन्तर्छिट्से विवरण जैसे एक अध्यात्मयोगमें ज्ञानदृष्टि बनानेके लिए प्रनतः दृष्टि बनानेके लिए यह कहा जाता है कि वह न रागयुक्त है न रागरहित है, वह तो एक चित् है इसी प्रकार सभी अशुद्ध शुद्ध पर्यायोंके बारमें कहा जाता है वह न मिथ्यादृष्टि है न मध्यादृष्टि है। वह तो चित् है। तो जैसे स्वभावदृष्टि करानेके लिए, स्वभावका दृढ़तम परिज्ञान परिचय करानेके लिए, जैसे स्वभावके स्वरूपका वरणन होता है ऐसा ही लगान सुनकर इस ही रूप चित्को सब दृष्टियोंसे मान लिया गया, तब यह भी मान लिया गया कि मोक्ष होनेपर ऐसा ही चित् रहा। है। लेकिन, अध्यात्म योनियोंने इस स्वभावदृष्टि करते समय यह विरोध नहीं रखा कि मेरा कोई परिरमण नहीं है, हाँ उस समय प्रयोजन स्वभावदर्शनका था मो परिणामनोंकी उपेक्षा की, उनको न निरखा, उनको उस समय विकल्पमें न लिया, एवं स्वभावमात्रको ही निरखा। यहाँ दार्शनिकने जो चैतन्यस्वरूप समवस्थानका नाम मोक्ष कहा है तो वहाँ चिदलक्षणका श्रव्य केवल वह चित् है जैसे कुछ स्वभावदृष्टिसे बताया जा सकता है। परन्तु वह स्वभाव तो एक लक्ष्यकी ओज है, स्वभाव ऐसा ही कोई स्वतन्त्र सत् है सो बात नहीं। जो सत् है उसका शाश्वत धर्म यह भी है कि वह परिणामनशील भी है। तो उस चित्स्वरूपका परिणामन है मोक्ष। लेकिन वह परिणामन ऐसा सम है कि उन परिणामनोंको निरखकर भी परिणामन लोग परिणामन तब समझ पाते हैं जब कुछसे कुछ बन जाय। समझमें नहीं आता। लोग परिणामन तब समझ पाते हैं जब कुछसे कुछ बन जाय। कुछ परिवर्तन समझमें आये। तो सहश और सम जो परिणामर्यादा हुई है उन्हें निरख कर लोग परिणामन नहीं समझ सके और उस स्वभावरूपको सुनकर तो परिणामनकी

कोई बात ही नहीं है। इस वातावरणमें एक कूटस्थ अपरिणामी चिह्नपका स्थाल बनाया गया है। तो बुद्धिगदोष नहीं किया दाशनिकने परन्तु सावधानीकृतदोष तो है। उस दृष्टिसे खूक गए जो एक वस्तुके स्वरूपको बताने वाले हैं। तो निदृप अवस्था हीनेका नाम जो मोक्ष कहा गया है वह कूटस्थ अपरिणामीरूपसे माननेपर तो अयुक्त है और अनन्तज्ञानादिक चतुर्थ्य स्वरूपमें वर्तंते रहनेरूपसे चैतन्यमात्रमें अवस्थान करनेका नाम मोक्ष है यह युक्त है।

आत्मसर्वज्ञत्वके प्रतिपक्षमें प्रकृतिवादका भंतव्य अनन्त ज्ञान, दर्शन, शक्ति, आनन्द ये आत्माके अस्वरूप नहीं हैं। ऐसा यदि हो तो सर्वज्ञतेका विरोध हो सकता है। क्योंकि आत्मामें ज्ञान तो रहा नहीं। स्वरूप समवस्थान ही आत्माका मोक्ष हो गया फिर सर्वज्ञ कीन रहा? यह बात सुनकर प्रकृतिवादी कहता है कि ठीक है सर्वज्ञ आत्मा नहीं हो सकता है, सर्वज्ञ तो प्रकृति हुआ करती है। आत्मा तो चिदरूप है, ज्ञानादिक तो प्रकृतिके घर्म हैं। तो सर्वज्ञ प्रकृति ही बनती है, आत्मा सर्वज्ञ नहीं है यह ठीक है इसमें क्या अपत्ति है? समाधानमें कहते हैं कि नहीं, प्रकृति अचेतन है। अचेतनसे यदि सर्वज्ञ बनने लगे तो आकाश क्यों नहीं सर्वज्ञ बन जाता? आकाश अचेतन है, अचेतन सर्वज्ञ हो तो आकाश भी सर्वज्ञ बनने लगे। यदि कहो कि ज्ञानादिक भी तो अचेतन है इसलिए ज्ञान प्रकृतिका स्वभाव बन गया। प्रकृतिका घर्म खूँकि प्रकृति अचेतन है इसलिये अचेतन ही होना चाहिये। यही तो आपने कहा है कि अचेतन प्रकृतिसे जो भी बात बनेगी वह सब अचेतन बनेगी। तो ज्ञान भी अचेतन है, प्रकृतिसे ज्ञान हुआ, पूर्ण ज्ञान हुआ, लो प्रकृति सर्वज्ञ होगयी आत्मा तो चैतन्यमात्र है।

ज्ञानको अचेतन माननेपर आपत्तियाँ -- अब प्रकृतिके सर्वज्ञत्वकी शङ्खाका समाधान करते हैं -- ज्ञान अचेतन है यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि वह अचेतन है, यह कैसे सिद्ध करोगे? यदि कहो कि अनुमानसे सिद्ध करेंगे ज्ञानादिक अचेतन हुआ करते हैं क्योंकि ये उत्पन्न होते हैं। जैसे घटपट आदिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं तो अचेतन है ऐसे ही ज्ञानादिक भी उत्पन्न होते हैं तो ये भी अचेतन हुए। आत्मा ही एक मात्र चेतन है, क्योंकि वह कूटस्थ अपरिणामी है। तो ये ज्ञानादिक भी अचेतन सिद्ध होते हैं। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है, तुम्हारा हेतु सदोष है अनेकान्तिक दोष सहित है। जो-जो उत्पन्न हों वे वे सब अचेतन हो जायें तो अनुभव भी तो उत्पन्न होता है लेकिन अनुभवको तो तुमने अचेतन नहीं माना। ज्ञान और अनुभव ये विशेषवादमें जुड़े-जुड़े तत्त्व हैं। अनुभवको तो चेतन कहा और ज्ञानको अचेतन कहा है। उन्होंने चैतन्य और ज्ञानमें क्या अन्तर डाला है इसको कुछ समझना है तो इस तरह समझ लीजिये कि जैसे ज्ञान और दर्शन माने गए हैं तो ज्ञानका काम तो जानना है, पर दर्शनका काम जानना नहीं है, दर्शन अनुभवात्मक होता है। यह अनुभव ज्ञानानुभव जैसा नहीं कहा जा रहा। यद्यपि ज्ञान और दर्शन दोनों अनुभवात्मक हैं,

किन्तु जो विकल्प सहित ज्ञान है ऐसे ही ज्ञानका काम तो जानना है, वह तो विशेष-वादमें अचेतन है, ज्ञानमें चेतनकी चेतन ही है पर अनुभव चेतन है। तो जो जो उत्पन्न हों वे वे सब अचेतन होते हैं ऐसा अनुपान बनानेमें अनुभव भी अचेतन बन बैठेगा। वह चेतन होनेपर भी उत्पन्न हुआ करता है, ऐसा माना है। अनुभव उत्पन्न हुआ करता है यह बात असिद्ध भी नहीं है क्योंकि जो जो परापेक्ष होते हैं वे वे उत्पन्न हुआ करते हैं ऐसा नियम है। जैसे बुद्धिको परापेक्ष माना है ना, कि इन्द्रिय प्रकाश आदिक अनेक साधारणोंकी अपेक्षा करके बुद्धि उत्पन्न होती है तो परापेक्ष होनेके कारण जैसे बुद्धिको उत्पन्न माना जाता है इसी प्रकार अनुभव भी परापेक्ष है। अनुभव कैने होता है? अनुभव कहते हैं अत्मा के द्वारा चेतने से। आत्मा जैसे उपका नाम अनुभव है, पर आत्मा अनुभवसे कव चेतता है? जब ज्ञान किनी विषयको निश्चित करदे और जानके द्वारा निश्चित किया गया अर्थ जड़ इस आत्माके समक्ष आया है तो बुद्धि द्वारा निश्चित किये गए अर्थको यह आत्मा चेतता है अर्थात् अनुभवता है। तो आत्मा जो यह अनुभव बना वह ज्ञाननिर्णयकी अपेक्षा करके बना तो परापेक्ष हुआ। जो जो परकी अपेक्षा करें वे सब उत्पत्तिमान हैं वे वे तुमने अचेतन माने हैं सो अनुभवको भी अचेतन माननेका प्रसङ्ग आ जायगा।

ज्ञानकी चैतन्यरूपता ज्ञानको अचेतन बतानेवाले अनुमानको बाँधने वाला यह अनुमान है कि ज्ञानादिक चैतन हैं क्योंकि ये स्वसम्बोद्धन प्रत्यक्षरूप हैं स्वसम्बोद्धनसे जाना जाता है कि यह ज्ञान क्या है। तो जो जो स्वसम्बोद्धन प्रत्यक्षसे जाने गए वे सब चेतन होते हैं, यदि कहो कि ज्ञान तो अचेतन ही है पर चेतनका सम्बन्ध मिलनेसे ज्ञान में चेतनताकी प्रसिद्धि हो गयी है, लोग इस ज्ञानको चेतन कहने लगे हैं, क्योंकि तो ज्ञानका चेतनसे सम्बन्ध हो गया यह भी कहना मात्र है, क्योंकि ज्ञानका संसर्ग चेतनसे हो जानेपर इस कारण ज्ञानमें चेतना आयी तो शरीरको संसर्ग इस चेतनसे है। तो इसको चेतन क्यों नहीं कहा? जब चेतनका सम्बन्ध होनेसे ज्ञान जानने लगेगा तो चेतनका सम्बन्ध पाकर शरीर भी जानने लगे, ज्ञान करने लगे। यदि कहो कि वह जो संसर्ग है ज्ञानका वह अनूठा है वह शरीरादिकमें नहीं पाया जाता है, कि वह अनूठापन क्या है सिवाय इसके कि आत्माके साथ तादात्म्य है। जो भिन्न भिन्न चीज है उसका एकके साथ दूसरेका अनूठापन क्या? यदि है ऐसा कोई खास सम्बन्ध तो तादात्म्य सम्बन्ध ही है। ज्ञानका आत्माके साथ कर्णचित् तादात्म्यसम्बन्ध है। जो ज्ञानस्वभाव है उसका तादात्म्य है पर ज्ञानका जो पारणमन है उसे निरखकर भिन्न माना जा रहा है और उसका उच्छ्रेद माना जा रहा है वे सब ज्ञान परिणामन जिस काल आत्मामें होते हैं उस काल आत्मामें तन्मय है। तो कर्णचित् तादात्म्यके सिवाय और वह संसर्ग क्या कहला सकता है।

ज्ञानकी आत्मस्वभावरूपता—यदि यह कहो कि वह अदृष्टकृत है, ज्ञान

जिनका सम्बन्ध आत्मासे हुआ यह अदृष्टके द्वाराहुआ तो कहते कि अदृष्टकृत तो शरीर भी है। जैसे अदृष्टकृत ज्ञान है सो ज्ञानका सम्बन्ध चेतनसे हो गया ऐसे ही अदृष्टकृत तो शरीर भी है। उसका भी सम्बन्ध चेतनमें मानलो। किर उस चेतनके सम्बन्धसे शरीरमें बोवं किया जाना चाहिये। इससे ज्ञानादिक अवेतन नहीं है वे सब स्वसम्बेष हैं। जैसे अपने अपने अनुभव अपने अपने द्वारा जाननेमें प्राप्त है तो वे चेतन हैं इसी प्रकार यह ज्ञान भी चौंके स्वसम्बेष है इस कारण चेतन है। तो ज्ञान चेतन है और आत्माका स्वभाव है क्योंकि चेतन है। जैसे अनुभव चेतनात्मक है तो आत्मा का स्वभाव माना गया है इसी प्रकार ज्ञान भी चेतनात्मक है इस कारण आत्माका स्वभाव है। और जैसे ज्ञान आत्माका स्वभाव है ऐसे ही सुख भी आनन्द भी आत्माका स्वभाव है। तो जैसे ज्ञानका पूर्ण विकास मोक्ष अवस्थामें होता वैसे ही आनन्दका भी पूर्ण विकास मोक्ष अवस्थामें होता है। जब मोक्ष नाम है ज्ञानानन्दके चरण पूर्ण विकासक तो ज्ञान अथवा आनन्द आत्माका स्वभाव न हो तो मोक्षमें ज्ञान और आनन्द की अभिव्यक्ति ही नहीं हो सकती है। जैसे दुःख आत्माका स्वभाव नहीं है तो मोक्षमें दुःखकी व्यक्ति तो नहीं है। रागादिक आत्माके स्वभाव नहीं तो वे मोक्षमें तो नहीं रहते इसी तरह ज्ञान और आनन्द भी मोक्षके स्वभाव नहीं होते, आत्माके स्वभाव न होते तो उनका प्रकट पना मोक्षमें भी नहीं हो सकता था।

**मोक्षकी अनन्तानन्दात्मकता** -यह नि.सन्देह मानना चाहिये कि मोक्ष आनन्दात्मक है क्योंकि चेतनात्मक होनेपर यह समस्त दुःखोंसे रहित रहा करता है, यह जो हेतु दिया गया है उसमें एक नियम और साथ जुड़ा हुआ है। चेतन होकर दुःख रहित है इसलिए मोक्ष सुखस्वरूप है। अन्यथा प्रथात् चेतनात्मक होनेपर यह न कहते तो ये घट,पट, लभा आदिक पुद्गाल पदार्थ इनमें भी हेतु घट जाता, ये भी दुःखरहित हैं इन्हें कहाँ दुःख है इसलिए कहा कि चेतनात्मक होकर दुःख रहित है। केवल इनना ही कहते कि चेतन होनेसे मोक्ष सुख स्वरूप है। तो उसकी तो यह चर्चा ही चल रही थी। इस आत्माको ये चेतन मकान ही रहे थे। विशेषवादी भो चेतन मान रहे हैं। नैयायिक भी चेतन मानते हैं। सांख्य भी चेतन मानते हैं पर उस चेतनमात्रते सुख स्वरूपकी सिद्धि तो नहीं मान रहे हैं इसलिए इसमें दोनों बातें सोबी गईं हैं। जो समस्त रूपकी सिद्धि तो नहीं मान रहे हैं यह भी प्रतीतिसिद्ध हो रहा है तो मोक्षभी चेतनात्मक है, दुःखोंसे रहित है अतएव सुखस्वरूप है। जो जो येतन है, दुःखरहि है वे अनन्दय ही हुआ करते हैं, साथ ही वे वह आनन्द अनन्त हैं ज्ञान भी अनन्त है क्योंकि आत्मा एक स्वभाव होकर फिर आवरण रहित है। जो जो तत्त्व आत्मामें स्वभाव होकर निरावरण हुआ करते हैं वे सब असीम विकसित होते हैं। जैसे ज्ञान आत्माका स्वभाव है और ज्ञानावरण नष्ट हो गया तो पूर्ण ज्ञान प्रकट होगा ही, इसी प्रकार आनन्द स्वभाव है और उसके बाधक हैं मोहनीय आदिक कर्म जब ये मोहनीय आदिक कर्म नष्ट

होते हैं तो वहाँ सुख प्रकट होता ही है। तो मोक्ष ध्वन्यामें सुख स्वरूपना है, न कि वह आनन्द रहित है और ज्ञानरहित है। वहाँ प्रतिबन्ध नहीं रहा यह बात सिद्ध ही है मोहनीय आदिकर्म और मोक्षमें नहीं रहते हैं। इससे वह बात मानना चाहिये कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द अनन्त शक्ति इस चतुष्टय स्वरूपका लाभ होनेका नाम मोक्ष है, ऐसे मोक्षके लिए जीवोंको उत्सुकता जगती है।

मोक्षकी और सकल प्रत्यक्षज्ञानकी निरावरणरूपता—यहाँ जीव बन्धन अनुभव कर रहे हैं। बन्धन बड़ा विचित्र है। कोई लोग समझते हैं कि हम बन्धनमें नहीं हैं पर बन्धन उनका चल रहा है। जैसे देशवासी लोग जब आजाद हुए तो अनेकों को यह अनुभव करने लगे कि हम तो स्वतंत्र हो गए, पर कहाँ स्वतंत्र हैं? न जाने कितनी—कितनी तरहकी चिन्तायें लदी हुई हैं, एक बड़ा बन्धनसा रात दिन अनुभव किया करते हैं। बहुतसे धनिक लोग जिनके पास सभी प्रकारके आरामके साधन हैं, व्याजसे किरायेसे व अन्य साधनोंसे बहुत बहुत आय होती रहती है, तो वे सोचते हैं कि हम तो बिलकुल स्वतंत्र हैं, किसीके आधीन नहीं हैं पर ऐसा सोचना उनका मिथ्या है, रात दिन भोगविषयोंकी अनेक प्रकारकी आशायें किया करते हैं यह उनका बन्धन ही तो है। जब तक जीवके आशा लगी है तब तक बन्धन है। तो बन्धनसे छूटनेका नाम मोक्ष है। इसके लिये हमें वहीं कहीं बैठे हुएमें, सामायिकमें अथवा किसी भी स्थितिमें रहते हुए यह अभ्यास करना होगा कि मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। मुझमें अन्य कोई उपाधि स्वरूप रूप नहीं पड़ा है। मैं सबसे विवित केवल अपने ज्ञानानन्दस्वरूप मात्र हूँ, ऐसा स्वभावका चिन्तन करनेका, उसे अपनानेका अभ्यास करना होगा और यह निज ज्ञानानन्दस्वरूपके चिन्तनका, दर्शनका अभ्यास करना होगा। ऐसा अभ्यास तत्काल भी शान्ति प्रदान करता है और इसकी धारणा इसका संस्कार उत्तरोत्तर बहुत समय तक शान्तिका कारण है और बढ़कर सदाके लिए शान्तिरूपका कारण बन जाता है। इससे हम हम अभ्यासको करें पर्याय बुद्धिको हटायें। इस देह, आकार, नाम आदिको ये मैं नहीं हूँ, ऐसा वारंबार भाव बनानेका अभ्यास करें तो इस भावनाके प्रसादसे ऐसा प्रकाश होगा, ऐसा अनुभव होगा कि यह इच्छा नष्ट हो जायगी। बस यही मोक्षमार्ग है। उसका उपाय यह रत्नत्रय है। तो इससे आत्म-विज्ञास, आत्मज्ञान और आत्मके उस ही प्रकार ज्ञातोरूप रहनेका आचरण ये जब पूर्ण हो जाते हैं तब वहाँ मोक्ष होता है, जहाँ ज्ञान, दर्शन शक्ति, आनन्द पूर्ण प्रकट होते हैं, इसीका नाम मोक्ष है। इसमें ज्ञान निरावरण रहता है और उस ज्ञानको सकलप्रत्यक्षज्ञान कहते हैं।

स्त्रीके मोक्षाविकलहेतुत्वकी असिद्धि—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि यह तो ठीक है कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति, अनन्द आनन्द स्वरूपके लाभ होनेका नाम वोक्ष है। किन्तु वह पुरुषके ही होता है यह बात अयुक्त है। यह

इवेष्ट पक्ष कह रहे हैं, क्योंकि उनके सिद्धान्तसे मोक्ष जो हैवह हिंद्रयोंके भी हुप्रा करता है, इसमें वे अनुमान देते हैं कि स्त्रियोंको मोक्ष होता है। क्योंकि सम्पूर्ण कारण मिलजाने से जैवे पुरुषोंका मोक्ष होता है इतीं प्रकार स्त्रियोंको भी जब समस्त कारण मिल जाते हैं तो उनका मोक्ष निश्चित है। यह हेतु असिद्ध नहीं है अर्थात् स्त्रियोंको समस्त कारण मिल जाते हैं यह बात सही है। अब इस शंकाका समाधान करते हैं कि यह कहना युक्त नहीं है कि स्त्रियोंको भी मोक्ष होता है क्योंकि स्त्रियोंके मोक्ष हेतु प्रत अविकलन कारणत्व अनिद्व है। ज्ञानादिक परम प्रकर्ष जो मोक्षके कारणभूत है अर्थात् ज्ञान अधिक होना प्रकृष्ट होना उत्कृष्ट होना, चारित्र उत्कृष्ट होना यह बात स्त्रियोंमें सम्भव नहीं है क्योंकि परम प्रकर्षताकी बात है। जैसे जो जो चीजें परम प्रकर्षताको लिए हए होती हैं वे स्त्रियोंमें नहीं पायी जा सकती। जैसे ७ वीं पृथ्वीमें नरकमें जानेका कारणभूत यापप्रकर्ष स्त्रियोंमें नहीं हो सकता। सप्तम नरकमें स्त्री मरकर नहीं जाती पुरुष हो जा सकते हैं, क्योंकि वह परम प्रकर्षता वाली बात है, तो इसी प्रकार ज्ञान और चारित्र कहीं परम प्रकर्ष प्राप्त होता है जब मोक्ष होता है तो परम प्रकर्ष रूप होने वाले ज्ञान और आरित्र ये स्वीं जनोंमें नहीं पाये जा सकते।

स्त्रीवेदके भावप्रकर्षताका अभाव—ग्रव यहाँ शंकाकार कहता है कि यदि स्त्रियोंमें ७ वें नरकके जानेका कारणभूत पापोंकी प्रकर्षता नहीं पायी जाती है तो न पायी जाय उससे मोक्षके कारणभूत ज्ञान चारित्रकी परम प्रकर्षता न होनेमें क्या आया अर्थात् यदि पाप उत्कृष्ट स्त्रियोंसे नहीं बनता तो मोक्षका कारणभूत भी ज्ञान चारित्र उत्कृष्ट स्त्रियोंमें नहीं बनता। इसका क्या सम्बन्ध, क्योंकि कायोंके साथ कारणका अविनाभाव होता है। यद्यपि के साथ व्यापकका अविनाभाव होता है। कोई नरक नहो जा सकता इसलिए मोक्ष भी नहीं जा सकता। इसका क्या सम्बन्ध है, इसमें अन्यवयःयतिरेककी कौन सी बात है। यदि किसी अन्य बातके अभावमें अन्य बातका अभाव मान लिया जाय तो इसमें तो बड़ी आपत्ति आयगी। कोई कहे कि यहाँ घोड़ा नहीं है इसलिए तीन लोक भी नहीं हैं। तो यों अटरट ऊँक भी कहा जा सकता। जैसे कि कह दिया कि स्त्रियोंके पापकी प्रकर्षता नहीं है तो मोक्षके कारणभूत ज्ञान चारित्रकी प्रकर्षता नहीं है। कोई कह देंगा कि यहाँ हमारा लड़का नहीं है दो सारी दुनिया नहीं है, यों अटपट जो चाहे कह सकते हैं, इसपर उत्तर देते हैं कि भाई ऐसा नियम है कि जिस वेदके मोक्षका कारणभूत परम प्रकर्ष होता है उस हा वेदके सप्तम नरकमें जानेके कारण पापोंका भी परमप्रकर्ष होता है। जैसे पुरुष वेदकी बात पुरुषवेदमें मोक्षके हेतु उत्कृष्ट पाये जा सकते हैं। तो पुरुषवेदमें ही सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत पाप भी उत्कृष्ट हो सकता है। यहाँ चरमशरीरी पुरुषोंको दोष नहीं दिया जा सकता कि भाई उत्कृष्ट हो सकता है। यहाँ चरमशरीरी पुरुषोंको दोष नहीं दिया जा सकता कि भाई चरमशरीरी जो पुरुष हैं जिनको उसी भवसे मोक्ष जाना है वे मोक्षमें जानेके भावोंका प्रकर्ष तो कर लेंगे, पर सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत उत्कृष्ट पाप नहीं कर सकते हैं। यह दोष यों नहीं है कि हम तो पुरुष सामान्यकी बात कह रहे हैं। पुरुषवेद वालेके

ऐसी योग्यता है कि उसके भाव बढ़े तो वे मोक्ष भी जा सकते हैं और भाव गिरे तो वे उन्हें नरकमें भी जा सकते हैं। विपरीत नियम सम्भव नहीं है कि जो ७ वें नरकमें जा सकता है और वह मोक्ष भी जा सकता है, ऐसा उटा नियम तो लागू नहीं होता, क्योंकि सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत उत्कृष्ट पाप नपुंसक वेदमें भी होते हैं पर नपुंसक वेदसे भी अर्थात् नपुंसक लोग भी मोक्षमें नहीं जा सकते। मोक्ष तो केवल पुरुषोंके ही माना गया है, इसलिए इस ओरसे नियम लगाना है कि जिस वेदमें मोक्षके उत्कृष्ट कारण सम्भव है। उस वेदवालेके सप्तम नरकमें जानेके कारण भी हैं। जो सप्तम नरक जा सके वह मोक्ष जा सके यह नहीं कहा जा रहा और जो सप्तम नरक नहीं जा सकता जिस वेदसे उस वेदसे मोक्ष तो सम्भव ही नहीं है। इससे स्त्री वेदसे भी यदि परम प्रकर्ष मोक्षका कारण बन जाय अर्थात् ज्ञान त्रिवित्र उत्कृष्ट हो जाय तो यह मानना पड़ेगा कि वह सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत उत्कृष्ट पापको भी करने लगेगा।

**पर्यायोंकी विभिन्न योग्यतायें** – संसारमें अनेक प्रकारके भव हैं। उन भवोंमें अपनी जुदी-जुदी योग्यता है। पशुपक्षी पर्यायमें कोई आया हो तो वह तो मोक्षका साधन नहीं बना सकता। मनुष्य भव पाकर भी मनुष्य भवमें ली देहमें इस प्रकारके कोपल शरीर और पुरुषमें असम्भव विभागोंकी योग्यता वाला आत्मा है कि उसके मुक्तिका साधन सम्भव नहीं है। तो जैसे स्त्रीवेदमें मोक्षके कारण उत्कृष्ट नहीं बन सकते, लेकिन उनका हेतु यह नहीं है, योग्यता ही इन दोनों वेदोंमें ऐसी है कि उनके भाव इतना अन्दरमें मलिनताको लिए हुए हैं कि बहुत कुछ धोनेपर भी, उज्ज्वल होने पर भी उतनी उतनी स्वच्छता नहीं उत्पन्न हो पाती कि मोक्षका उत्कृष्ट साधन उनके बन सके। सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत पापोंकी उच्चता नपुंसकमें नहीं है, यह भी नहीं कह सकते। ये दोनों ऐसी योग्यता वाले हैं कि इनमें मोक्षहेतु पूर्ण नहीं आ सकता है अथवा जो युक्त अनुमान बनाया गया है कि जहां सप्तम नरकमें जानेके कारणभूत पापोंकी उच्चता सम्भव नहीं है उस अनुमानमें इस हेतुसे मोक्षकी परम प्रकर्षताका स्त्रीमें निषेध नहीं किया जा रहा बल्कि परम प्रकर्षत्वके नातेसे दृष्टान्तमें साध्यकी व्याप्ति की जा रही है। इसमें कहीं दोष नहीं आता।

**स्त्रियोंमें मायाचारकी परमप्रकर्षता नहीं किन्तु वहुलता** – यदि कहो कि यह कहाना तो गलत है कि स्त्रियोंमें किसी भी बातकी उत्कृष्टता नहीं हो सकती, उनमें मायाचारकी तो अति उत्कृष्टता है। इतनी उत्कृष्टता न पुरुषवेदमें सम्भव है न नपुंसकवेदमें। उनके मनमें कुछ, वचनमें कुछ और कायकी चेष्टायें कुछ ये उत्कृष्टतासे पायी जाती हैं। उत्तर देते हैं कि यह भी कथन ठीक नहीं। आगममें जो मायाचारकी बात बताई गई हैं स्त्रीजनोंमें, उसका कारण यह है कि मायाचार बहुलता से होता है। उत्कृष्टताकी बात नहीं है। अनेक लोगोंमें अनेक प्रकारके मायाचार

चलते हैं पर वे मायाचारमें उत्कृष्टता पा लें यह बात आगममें नहीं कही गयी। वैसे अनेक कथन ऐसे हैं कि उत्कृष्ट मायाचार तो पुरुषोंने किया। जैसे इतने बड़े कठिन प्रसङ्गमें जब कि रावणने यह प्रण कर लिया था कि मैं दशरथ और जनकका शिर ही उड़ा दूँगा ताकि न राम-सीता उत्पन्न होंगे न मेरा (रावण) का मरण होगा। यह बात जब दशरथ और जनकके मंत्रियोंने सुनी तो उन्होंने इतना प्रबन्ध किया कि दशरथ और जनकको गुप्त कर दिया और ठीक उन जैसी ही सही सूति लालकी बनवा कर रख दी और लोगोंका आदागमन वजित कर दिया विभीषणने भाईके मोहमें आकर उन दोनोंका कत्तु कर दिया और समुद्रमें फेंक दिया। पर वे तो कत्रिम अचेतन लालकी सूति थी। यद्यपि यह मायाचार बुरे श्रावणका न था, तो भी यह देखिये, ऐसे ऐसे बड़े बड़े ऊँचे ऊँचे मायाचारी लोग हो गए, तो मायाचारकी उत्कृष्टता स्थियोंमें छोटी है जहाँ यह भी कहा गया, वहाँ बहुत प्रकारके मायाचार स्त्रीजनोंमें होते हैं यह बताया गया है अन्यथा पुरुषों की तरह विश्वोंके भी सप्तम नरकमें गमनका प्रसङ्ग आ गया अथवा जो हेतु दिया गया है उप हेतुमें इतना और बड़ा दीजिये कि मायाके परम प्रकर्षके अंतरिक्त अन्य परम प्रकर्षता स्थियोंमें सम्भव नहीं है। इस तरहका विशेषण लगाकर यदि यह हेतु बनाया जाय तो दोष नहीं है। कषायकी उत्कृष्टता पुरुषोंमें सम्भव है। भले ही बड़ुत जलदी समझमें ऐसा आता कि कोध मान, माया, लोभ आदिक कषायें स्थियोंमें अधिक हैं पर उन स्थियोंसे भी अधिक कषायें पुरुषोंमें सम्भव हैं। जितनी उत्कृष्टतासे इन कषायोंके काम प्रूष कर सकते उतनी ही उत्कृष्टता के साथ स्त्रीजन नहीं कर सकती हैं। बहुलताकी बात अवश्य पायी जाती है। इससे ज्ञानादिकका परम प्रकर्ष जो कि मोक्षका कारण है वह स्त्रीवेदमें सम्भव नहीं है। इस कारण तृम्हारा यह हेतु अपिद्ध है कि स्त्रीवेदसे भोक्ष होना है क्योंकि समस्त कारण इकट्ठे हो जाते हैं। ज्ञानादिक जिस प्रकार पुरुषवेदमें उत्कृष्टताको लिए हुए प्रमाणासे सिद्ध होता है उस प्रकारकी उत्कृष्टनाको लिए हुए ज्ञानादिक स्त्रीवेदियोंमें सम्भव नहीं होते अर्थात् यदि स्त्रीवेदमें ज्ञानादिक प्रकर्षहासे आ जायें तो किर परम प्रकर्षता न पुंसकोंमें भी उस प्रकारसे आ जाय और ऐसा होनेपर किर न पुंसकोंके भी मोक्षका प्रसङ्ग होगा।

स्थियोंमें मोक्षहेतुभूत संचयका अभाव— संयम जो मोक्षका हेतुभूत है वह स्थियोंमें असम्भव है। स्थियोंका सयम मोक्षका कारणभूत नहीं होता क्योंकि उनके संयम अद्विविशेषका भी कारण नहीं बनता। मोक्षकी बात तो दूर रहो, ६४ अद्विद्योंमें जो विशेष अद्विद्य है उनकी भी स्त्रीजनोंमें सम्भावना नहीं है। तब किर केवलज्ञान जैसी उत्कृष्ट समृद्धि की पात्रता उन स्त्रीजनोंमें कैसे हो ? जबकि संयम सांसारिक लन्धियोंका कारण नहीं बन सकता वहाँ फिर समस्त सङ्घठियोंके दूर होजाने के स्वरूप मोक्षरूपी उत्कृष्ट लन्धि कैसे सम्भव है। स्त्रीजनोंमें मोक्षके हेतुभूत कारणोंका संयम नहीं माना गया है। तो ये सब बातें इस बातको असिद्ध करती हैं कि ऐसा

उत्कृष्ट संयम स्थिरोंके सम्भव नहीं जैसे कि पुरुष जनोंके सम्भव है। समस्त अन्योंका त्याग कर दें, लज्जा आदिक सब प्रकारके विभावोंका भी परिहार कर दें ऐसी बात स्त्री जनोंमें सम्भव नहीं है। इसी कारण जो उत्कृष्ट निर्विकल्प समाचित है, शुक्लध्यान है, वह शुक्ल ध्यान स्त्रीजनोंमें सम्भव नहीं है। इस बातको सुनकर पुरुष जन तो यह शिक्षा ले सकते हैं कि जितना उत्कृष्ट भव पाया है और कैसी निरोगता पाई है या अनेक किसकी ऐसी व्याधियाँ जो पुरुषोंमें असम्भव हैं, स्थिरोंमें ही सम्भव है वे व्याधियाँ नहीं हैं। तो ऐसी स्थिरतेको पाकर पुरुष जनोंको आवश्यक है कि वे वर्षसाधन में अपनेको अधिक जुटायें और स्त्रीजन यह शिक्षा ले सकते हैं कि हमको अभी आने आत्माकी स्वच्छता जी तैयारी करनेका काम बहुत पड़ा हुआ है हम बहुत कुछ निम्न दशाओंको तो पार कर चुके पर अब भी बहुतसी बातें मोक्ष मार्गके निये करनेको पड़ी हुई हैं। इनका अधिक ध्यान देना है, अधिक स्वच्छता उत्पन्न करनेका यत्न करना है।

स्थिरोंमें मोक्षहेतुभूत उत्कृष्ट संहननका अभाव इप प्रसङ्गमें यह कहा जा रहा है कि मोक्ष स्त्रीशरीरसे सम्भव नहीं है, पुरुष शरीरसे सम्भव है। तो इसमें इस कारणते परस्तर विवाद सम्भव नहीं है कि आजके समयमें न पुरुष जनोंका मोक्ष है और न स्त्री जनोंका मोक्ष है इसका कारण यह है कि वह संहनन ही नहीं है। देखिये ! ध्यानकी निर्वचन स्थितिके लिए उत्कृष्ट संहननको भी आवश्यकता है। यद्यपि संहनन हममें नहीं है, शरीरकी बात शरीरमें है, आत्माकी बात आत्मामें है, लेकिन यहाँ प्रसिद्ध निमित्त नैमित्ति न सम्बन्धको कौन मना कर सकता है ? वस्तु दृष्ट-रूपकी बात यह है और जीव अजीवकी बात तो प्रकट ही है कि जीवमें अजीव नहीं। मगर जीव जीवोंमें भी एक दूसरे जीवके कुछ परिणामनको कर सकने वाला नहीं है। इतना ही नहीं, एक जीव तो दूसरे जीवके किसी भी परिणामके लिए निमित्त भी नहीं बनता। जीवके कायथेके लिए शुभ हों, अशुभ हों, उनके लिए अजीव निमित्त बन जाते हैं मगर जो जीव गदार्थ है, जीवद्रव्यकी जो कृतियाँ हैं वे दूपरे जीवोंकी कृतियोंमें कारण नहीं बन पातीं। जो यद्याँ कुछ स्पष्टलगामें प्रकट सा मालूम होता है कि किसी के उपदेशसे अनेक लोग तिर जाते हैं तो तिर जाने वालोंने किसका आश्रय लिया ? जीवका आश्रय नहीं लिया किन्तु उत्कृष्टके जो बचन ये उन बचनोंहैं आश्रय लिया है। तो पुद्गल ही तो आश्रय बना, जीवके लिए तो अन्य जीव आश्रय अथवा निमित्त भी नहीं बन पाते। पुद्गलमें भी चोटें भी न जर आता है, एक स्कव है और उन स्कन्धमें अनन्त परमाणु हैं, उनमें एक परमाणु दूसरे परमाणुमें रूप, रस, गति, स्पर्श परिणामित किया वे कुछ नहीं डाल सकता है। तो बस्तुस्वरूपकी बात तो यह है कि एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं है लेकिन जितने उत्कृष्ट काम होते हैं, पूर्ण स्वभावविकासकी बात नहीं कह रहे हैं, स्वभावविकासरूप बात होनेवर भी जिसमें कुछ विभवोंका भी संसर्ग है ऐसी परिणामियाँ कोई आश्रय और निपित्तका सञ्चितान पाकर होती हैं। जिनका संहनन उत्कृष्ट है, जीवोंके द्वारा किए गये उपतंगों

की सहनशीलता विशेष है ऐसे संहननशारी पुरुष उत्कृष्ट ध्यानके पात्र बन पाते हैं। तो उत्कृष्ट संहनन स्त्रीवेदमें नहीं माना गया है, वहाँ केवल ३ संहनन होते हैं। कर्म-भूमियाँ महिलाओंकी बात कह रहे हैं भोगभूमियाँ महिलाओंकी बात नहीं कह रहे हैं। भोगभूमियाँ स्त्रीपुरुष द्वानोंको मोक्ष नहीं है, पर कर्मभूमियाँ महिलाओंमें ३ अंतिम संहनन हो सकते हैं। वहाँ आदिके ३ संहनन नहीं माने गए हैं। तो ऐसे शरीरमें उत्कृष्ट ध्यानकी पात्रता नहीं होती। चंचलता तो उत्कृष्ट बन सकती है किंतु स्थिरता उत्कृष्ट नहीं बन सकती।

स्त्रियोंमें पञ्चम गुणस्थान तकके संयमकी पात्रता - हाँ संयममात्रकी बात यदि कहते हैं कि स्त्रीजनोंके संयम होता है, तो हाँ होता है, उन का उत्कृष्ट संयम आर्योंव्रत तक माना गया है। आर्योंव्रतमें यद्यपि भावोंकी उक्षणताको लेकर निरखा जाय कि इन भावोंमें उत्कृष्ट भाव कितने हो पाते हैं उनकी दृष्टिसे उन्हें मुनिवत् कहते हैं। पर करणानुयोगकी दृष्टिसे पंचम गुणस्थान ही माना गया है। छठा गुणस्थान स्त्रीजनोंमें सम्भव नहीं है। गुण शब्दका अर्थ यह है कि श्रद्धा और चारित्र गुणोंका विकास ? श्रद्धागुणके विकासकी भी बात यह है कि स्त्री जब क्षायिक सम्प्रकृत्व उत्पन्न नहीं करते और उसके पहिले मनुष्य आयुका बन्ध कर लेते हों तो वे मनुष्य भोगभूमिमें जाते हैं पर वहाँ भी वह पुरुष ही तो होगा ? स्त्रीवेदमें इसकी भी उत्कृष्टता नहीं मानी गयी है। चारित्रकी उत्कृष्टता तो सम्भव ही क्या है ?

सवस्त्रसंयमसे मोक्षकी श्रसिद्धि - मोक्षका कारणभूत उत्कृष्ट संयम स्त्री जनोंमें इस कारण नहीं है कि उनका सवन्त्र संयम है। सवस्त्र संयममें उत्कृष्टता नहीं बन सकती। संयमकी उत्कृष्टता तो निर्विश्वास संयम नहीं देखा गया है और न आगममें बताया गया है। और ऐसा भी करना युक्त नहीं कि आगममें नहीं बताया गया फिर भी मोक्ष सुखकी श्रमिलाषासे स्त्रीजन वस्त्रोंका त्याग करदें तो यह आज्ञाका उल्लंघन झरनेसे तो मिथ्यात्वकी आराधना बन जावेगी। सम्प्रकृत्व भी उनके नहीं रहा। तो जहाँ सम्प्रकृत्व ही नहीं रहा, उपका नाम संयम पड़ ही नहीं सकता। ऐसा भी नहीं कह सकते कि पुरुषोंका तो निर्वस्त्र संयम हेतु बनेगा और न स्त्रियोंका सवस्त्र संयमहेतु बनेगा। यह बात क्यों युक्त नहीं है कि मोक्षका स्वरूप एक प्रकारका है और जिस प्रकारके कारणोंसे मोक्ष हो सकता है तो उस मोक्षके कारण भी एक प्रकारके हो सकते हैं। यदि इस प्रकारकी हठ करोगे कि पुरुषमें तो अवस्त्र संयमसे मोक्ष होता है और स्त्री जनोंका सवस्त्र संयमसे मोक्ष होता है तो ऐसा जब कारणभेद डालते हैं तो उनका कार्य जो मोक्ष माना गया उसमें भी भेद पड़ जायगा और फिर जैसे स्वर्ग सोलह हैं, अनेक स्वर्ग हैं तो इनी प्रकार मोक्ष भी अनेक हो जायेंगे। कोई निम्न दर्जे का मोक्ष कोई उत्कृष्ट दर्जे का मोक्ष, फिर तो जो देश संयमीजन हैं उनको भी मुक्ति

हो जायेगी और अगर ऐसा मान लो कि होने दो मुक्त, गृहस्थोंकी भी पुक्ति होती है तब किर साधु भेष प्रहण करना अनर्थक हो जायगा । पर ऐसा नहीं है । तो सबस्त्र संयम पालन करने वालोंकी मुक्ति नहीं है । गृहस्थ लोग सबस्त्र हैं तो उस सबस्त्र श्रवस्थामें कहाँ उनकी मुक्ति होती ? परम प्रकर्ष प्राप्त ज्ञान और चारित्र सबस्त्रधारी संष्पर्मके साथ नहीं आ सकते । और किर यह बात बतलावे कि सबस्त्र संयममें भी मुक्ति होती है यह तुमने कैसे जाना ? इवेतटोंसे पूछा जा रहा है । कहोगे कि हमने तो आगमसे जाना तो तुम्हारा आगम तुम्हारे लिए ही तो प्रमाण है, अन्य जनोंन लिए तो आगमाभास है । वह तो अप्रमाण है । यदि हिंसीका भी आगम हो और उनकोई दूसरा प्रमाण मान ही ले ऐसा नियम बनाया तो यज्ञ अनुष्ठान, पूजन, होप, हवन आदिक ये भी अनेकोंने अपने आगममें कहे हैं तो उनके इस हिंसा आदिक अनुष्ठानको भी मानना पड़ेगा इसलिए आगम तुम्हारा तुम्हारे पास है युक्तियोंसे सिद्ध करें और सहायक योगमें बताई गई मुख्य युक्तियोंने पिछ करिये । जो सबस्त्र संयमधारी हैं उनकी मुक्ति सम्भव नहीं है । सो जो अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप मोक्षका लाभ है यह पुरुषोंमें ही सम्भव है ।

साधुजनोंसे अवन्दनीय सपरिग्रह होनेसे स्त्रीमुक्त्यभाव स्त्रियां मोक्षके कारणाभूत संयमसे सम्बन्ध नहीं होती हैं क्योंकि स्त्रियां साध्वी भ्रत लेवें, तो भी साधुपुरुषोंके द्वारा बन्दनीय नहीं होती । इससे पिछ है कि स्त्रियोंका संयम मोक्षका कारण भूत नहीं है । और इसका अनुमान प्रमाण है कि स्त्रियोंकी मोक्ष नहीं है, क्योंकि वे साधुवोंके द्वारा बन्दनीय नहीं हैं । यह हेतु असिद्ध नहीं है, इवेताम्बरोंके ग्रन्थोंमें ही खुद लिखा है कि यदि १०० वर्षोंकी भी दीक्षित आर्थिका हो तो उस आर्थिकाके द्वारा एक दिनका भी दीक्षित साधु पूज्य होता है । वह आर्थिका एक दिनके दीक्षित साधुको भी नमस्कार करेगी इससे सिद्ध है कि स्त्रीजनोंका संयम मोक्षका कारणभूत नहीं है, और भी हेतु दे रहे हैं कि स्त्रियां वहिरङ्ग और अन्तरङ्ग दोनों प्रकारके परिग्रहों । मुक्त रहा करती है इस कारण उनका संयम मोक्षका कारणभूत नहीं है । जैसे कि गृहस्थोंका संयम मोक्षका कारणभूत नहीं है, इसी प्रकार स्त्रियां भी वहाँ और आम्यंतर परिग्रहों से युक्त हैं । स्त्रीजनोंके द्वारा बाह्य और आम्यंतर परिग्रह सर्वथा त्यागे नहीं जा सकते इस कारण उनका संयम मोक्षका कारणभूत नहीं है ।

वायुकार्यहिंस्त्रपरिहारार्थ वस्त्राधानकी विडम्बित युक्ति—यहाँ इवेतामर लोग कह रहे हैं कि वे स्त्रियां इसलिए वस्त्र रखती हैं कि शरीरमें रहती है गर्भों तो शरीरकी गर्भोंके कारण वायुकायके जीवोंकी विराघना हो जायगी । तो शरीरकी गर्भोंसे वायुकायके जीवोंका धात न हो जाय । उनके धोतके निवारणके लिए वे स्त्रियां वस्त्र पहनती हैं । यद्यपि अपने शरीरमें अनुग्राम नहीं है, किर भी उन जीवोंकी हिंसा न हो जाय इस भावनासे प्रेरित होकर वे स्त्रियां वस्त्र धारण करती हैं । तो

द्वेषःस्वरोंके इस कथनका उत्तर देते हैं कि शरीरकी गर्भमें वायुकायके जीवोंका घात न हो जाय इस कारण वस्त्र धारण किया जाता है तो पुरुषोंमें अगर निर्गन्धवृत्ति हो जाय वस्तु त्याग करनेकी वृत्ति हो जाय तो फिर इस हेतु से वे हिंसक सिद्ध हो गए । तो अगर ऐसा मानोगे कि वायुकायके जीवोंमें हिंसा न होने पाये इस उद्देश्यसे वे स्त्रियाँ वस्त्र पहिनती हैं तो फिर इसमें साधुवोंके हिंसाका प्रसंग आ जायगा । यदि वे निर्गन्ध मुद्राधारी साधु शरीरमें वस्त्र न धारण करनेसे वायुकायके जीवोंकी हिंसा कर रहे हैं तो फिर अरहतदेवने निर्गन्धताका वीतराताका उपदेश करों दिया सीधे यही कह देते कि वस्त्रधारी गृहस्थ भी मुक्तिके पात्र होते हैं । औरे जब वस्त्र सहित गृहस्थ मुक्तिके पात्र हो गए तो तुम्हारे आगममें जो आचेलक्ष्य, श्रीदेशिक आदि हैं वे सब व्यर्थ हो जायेंगे । जो १० प्रकारके संयम बताये हैं वे फिर व्यर्थ हो जायेंगे । और फिर यह बात है कि ग्रहण कर भी ले व त्र तो जनुवोंका हिंसा तो बराबर रही आयी क्योंकि वस्त्रके द्वारा हाथ तो सदा ढके न रहेंगे । पैर उघड़े रहेंगे तो हाथ पैरोंकी गर्भसे जीव हिंसा बराबर रही तब तो जीव हिंसाका परिहार नहीं किया जा सकता । वस्त्र ग्रहण करनेसे तो हिंसा अधिक होंगी ।

घातोपकरण वस्त्रके विधानमें अनेक आपत्तियाँ – घातका उपकरण होने पर भी यदि उन वस्त्रोंको स्वीकार कर रहे हैं तो केश बाल श्रादिकका फिर लुंचन ए करना चाहिये । क्योंकि वहां पर भी जुवां लीख वर्गीरह हैं, उन केशोंका लोंच करनेसे तो उन जीवोंको बाधा आ जायगी । और फिर कभी उपवास भी न करना चाहिये क्योंकि पेटमें जो कीड़े पड़े होंगे तो उनको उपवास करनेपर बड़ा कष्ट होगा । वस्त्रों के धारण करनेसे वस्त्रोंको घोया, सुखाया, फैलाया तो वस्त्रमें हवा भी लगी तो वस्त्रों के फैला देनेसे उत्पन्न हुई जो हवा है उससे फिर आकाश प्रदेशमें रहने वाले जनुवोंको बाधा हुई । स्त्री बाह्य और आम्बन्तर परिग्रहोंसे सहित हैं इस कारण मोक्षके कारण भूत सयमके धारण करने वाली नहीं हो सकती हैं । इन सब बातोंको समझनेसे स्त्री पर्यायमें और पुरुष पर्यायमें बड़ा अन्तर समझमें आ रहा होगा । यह तो मोक्ष मार्ग नी बात है पर उनके भक्ट लगे भी कितने बड़े हैं और उनको कितने समयपर कष्ट हुआ करता है, सो वह किसी पुरुषमें समझव नहीं है । तो स्त्री पर्याय भी अपनी हट आप हैं और पुरुष पर्यायमें आप हैं तो उन्हें एक धर्मपालनसे प्रेरणा मिलनी चाहिये कि देखो हमको बड़े दुलभ मानव जीवन प्राप्त हुआ है, अब हम अपने ज्ञानकी आराधगममें ऐसा बल दें कि श्रव हमारा जन्म किसी भी नीची पर्यायमें न हो । स्त्री न सुनकर अपनेमें धर्मपालनका यों साहस बनायें कि अभी हमको कुछ और गति बढ़ाना है मोक्षमार्गमें छलनेके लिए इस स्त्री पर्यायसे न प्राप्त होगा । उसके हेतुवोंको देते हुए इस समय यह हेतु चल रहा कि चौंकि वे स्त्रियाँ वस्त्र पहिनती हैं इस कारण समस्त्र संयममें मुक्ति समझ नहीं है, यह बहानेकी बात ठीक नहीं कि वस्त्र धारण करनेसे शरीरकी गर्भसे उत्पन्न हुए जीव न मरेंगे । यदि ऐसा कहोगे तो फिर मुनिजमोंको विहार करनेके लिए

मना क्यों नहीं किया गया । मुनिजन तो निर्ग्रन्थ मुद्राधारी होते हैं । उनके शरीरमें गर्भकि कारण जीवोंकी हिंसा संभव है सो हिंसापरिद्वारके लिये वस्त्राधान मानोगे तो इसमें तो विरोध आयगा ।

वस्त्र हिंसाका व क्षोभका कारण होनेसे सबस्त्रसंयमसे मुक्तिकी असिद्धि - जैसेकि यज्ञका अनुष्ठान पशुओंकी हिंसा करने वाला होनेसे त्याज्य है इसी प्रकार वस्त्रग्रहण भी हिंसाके विषय होनेसे त्याज्य है । बाह्य और आम्यंतर समस्त परिग्रहोंका त्याग करनेसे संयम बनता है । ये परिग्रह हिंसा, क्षोभ और अन्तरङ्ग मृदता के कारण बनते हैं । इस कारण अन्य उपकरण भी त्याज्य है । इसके सम्बंधमें और भी कहा कि जब बाह्य और अन्तरङ्ग परिग्रह नहीं रहे, सब प्रकारके परिग्रहोंका त्याग हो गया उसका नाम है संयम । मनमें क्षोभ रहना सम्भव है, कोई वस्त्र फट जाय तो उसकी याचनाका भाव हो सकता है मांगनेका भाव बन सकता है । तो जहाँ याचनाका भाव आया वस्त्राचाना हो चुकी । वस्त्र फट जाय तो उसके धोने सुखाने, सीने आदि की जरूरत पड़ती है और उन कार्योंके करते हुएमें क्षोभ भी करना पड़ता है । तो जहाँ इस प्रकारके परिग्रह सम्बन्धी क्षोभ उत्पन्न होते हैं वहाँ संयम हो ही नहीं सकता । तो इन वस्त्रोंका ग्रहण करना संयमका घातक ही है । जब तक सकल परिग्रहोंका त्यागकर निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण नहीं की जाती जब तक संयम टिक नहीं सकता । ऐसी निर्ग्रन्थ मुद्राका धारण करना पुरुषोंमें ही सम्भव है । अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति अनन्त आनन्दकी प्राप्तिका नाम भोक्ता है, ऐसा मोक्ष पुरुषोंके ही सम्भव है ।

लज्जावेदनामनःक्षोभनिवृत्त्यर्थं वस्त्राधानकी युक्तियोंका निरसन — लज्जाकी निवृत्तिके लिए वस्त्रादिक ग्रहण किये जाते हैं तो यों भी कहा जा सकता कि काम पीड़ा आदिककी शान्तिके ए फिर कामिनी आदिकका ग्रहण क्यों नहीं कर लिया जाय ? और फिर जिस—जिस चीजके बिना पुरुषोंको पीड़ा उत्पन्न हो फिर वे सब चीजें ग्रहण करना चाहिये जहाँ कुछ भी वेदना हो उसकी शान्ति करनेके लिए सावन जुटा लेना चाहिये । यदि यह कहो कि वस्त्रका दुकङ्गा ग्रहण करने पर भी वास्तवमें वे विरक्त हैं तो यों क्यों नहीं कह दिया जाता कि स्त्रीमें रमने पर भी वास्तवमें वे साधु विरक्त ही हैं । इससे वस्त्र ग्रहण करना रंचमात्र भी युक्त नहीं है । यह भी नहीं कह सकते कि अपने भनको छोभ न हो जाय इसलिए वस्त्र ग्रहण करते हैं तो कहते हैं कि जब उसके बाज़द्वा ही नहीं है, बाज़द्वाका कारण नहीं है तो फिर क्षोभका निषेध कैसे सम्भव है ? अरे वह पर्याय ही ऐसी है कि जहाँ आम्यंतर राग रहता ही है । लज्जा होना यह भी तो एक कषाय है । इस कषायका विनाश स्त्री पर्यायमें हो ही नहीं सकता इस कारण स्त्रियोंका वस्त्र ग्रहण करना अनिवार्य है । जहाँ वस्त्र ग्रहण है वहाँ तद् विषयक राग है इस कारण सबस्त्र संयममें मुक्ति नहीं हो सकती और फिर एक क्षोभ की निवृत्तिके लिए वस्त्रोंका ग्रहण करना मान रखा है यह बात तो अयुक्त है । साधुवों

की निर्ग्रन्थ मुद्राको देखकर तो उसमें किसीको राग नहीं उत्पन्न होता । कारण कि उनका शरीर देखनेमें मरिन है । वे स्नान नहीं करते, किसी भी प्रकारका शृंगार नहीं करते । मरिनता उनके देह पर अधिक बसी है इसीलिए तो उन्हें स्वयंके शरीरको देख कर राग नहीं होता, वास्तविकता यह है । इससे मानना चाहिये कि जो वस्त्र ग्रहण किये जाते हैं वे परिग्रह कहलाते हैं । तो जहाँ निर्ग्रन्थता नहीं है वहाँ न तो समय चलता है और न मोक्षकी प्राप्ति ही सम्भव है । इवेताम्बर लोग सवस्त्र भी मोक्ष मानते हैं और इसी कारण भी सवस्त्र मुक्तिका समर्थन है और यहाँ तुमने बताया कि कोई गृहस्थ भी हो सवस्त्र और किसी क्षण उसका भाव बड़ा ऊँ ग बन जाय तो उसका भी मोक्ष सम्भव है । इसी आधारपर बहुत वस्त्रोंको रखना भी धीरे-धीरे एक सम्मत मान लिया गया ।

सवस्त्र मुक्ति माननेके कारणकी घटना—इवेताम्बर सिद्धान्तमें साधुके यह बल रखना कबसे शुरू हुआ ? तो उनका प्रतिगादन है कि करीब हजार वर्ष पहले कोई १२ वर्षका अकाल पड़ा उस अकालके समयमें लोग संयमसे न रह सके । तो आहार किए बिना गुजारा सम्भव नहीं है, आहार तो करना ही पड़ता है । अब किस तरह आहार करें ? दिनमें आहार करने जायें तो दान देने वाले लोग परशान होजायें, रात्रिमें आहार लेने जायें तो उसमें भी अनेक विष आये । कहीं कुत्ते लोग उन भिक्षा मांगने वालोंके पीछे लग जायें, कहीं छोटे-छोटे बच्चे लोग उनके पीछे लग जायें । ऐसा वह दुर्भिक्ष काल था । ऐसे दुर्भिक्षके समयमें गिक्का लेने जाना भी असम्भव हो गया था । तो ऐसे समयमें वे सर्वदा वस्त्र पहिनकर भिक्षा लेने जाने लगे । नग्नहृषमें भिक्षा लेने जाना कठिन बन गया था । तो अब भी इवेताम्बर शास्त्रोंमें चर्यके प्रपञ्च में एक वस्त्र पहिनकर जाना कहा है । एकवस्त्र रख सकते हैं लो प्रकारके साधु बताये हैं । एक ! जनकली और एक अश्वन्तरकली । जिनकली साधु तो उनका नाम है जो तीवर्धकरके समान निर्ग्रथ दिगम्बर साधु रहे और जो वस्त्रसहित साधु रहे वे स्थविर कली साधु कहलाते । इवेताम्बरोंके आगममें जिनकली साधु सर्वोक्त हैं, उनके नीचे किर सवस्त्र साधुवोंकी कक्षा मानी गई है । फिर उन निर्ग्रथ और सवस्त्रमें परस्पर ऊँ-नीचपनका कुछ व्यवहार चलने लगा तब किर सवस्त्र मुक्ति और सवस्त्रका अधिक विधान प्रसिद्ध कर दिया और आजके समयमें तो अनेक तरहके वस्त्रोंके नाम विधानमें रख दिये गए हैं । भला बतलावो चर्हीं वस्त्रोंका संग्रह हो वहाँ उनके रखने उठानेका विवाद न होगा क्या ? और इन पर वस्तुओंके संग्रह विश्वह करनेसे इस आत्माका कुछ भी भला न होगा ! कहाँ तो यह आत्मा निविकल्प अलण्ड ज्ञानानन्द रूप है इसका वह ज्ञानानन्द स्वरूप इस एक उत्कृष्ट निविकल्प संमाधिके द्वारा ही सिद्ध हो सकता है । और कहा ऐसे उकरण बना लिये कि जिसमें विकल्प भी बहुत सम्भव हैं, तो वस्त्र धारण करके मुक्ति पुरुषोंमें भी असम्भव है और स्त्रीजन तो वस्त्र बिना रह ही नहीं सकते । आगममें विधान हो नहीं है तो जो वस्त्र संयम

मोक्षका हेतुभूत नहीं है। सबस्त्र पुरुषोंकी जो आराधना है उससे मोक्ष प्राप्त न होगा। मोक्ष तो प्राप्त होगा रत्नत्रयकी पूर्ण साधनासे।

पिच्छौषधादि ग्रहण करनेमें रागपोषणका अभाव—यहाँ यह भी नहीं कह सकते कि तब तो पिछो आदिक उपकरण भी न ग्रहण करना चाहिये। इत्ती जन्मुरक्षा के लिए है। जंगलमें मोरके द्वारा अपने आप छोड़े हुये ३-४ पिच्छ अगर ले लिए तो वे तो जंमुरक्षाके लिए हैं। न वहाँ राग है न बाह्यमें कोई आरम्भ है। हाँ बहुतसे पिच्छ इकट्ठे करके पिछो बनाई जाती है यह न था पहिने, पिच्छग्रहण वैराग्य का साधनभूत था। रोगनिवृत्यर्थ श्रीष्टि ग्रहण करना भी अवैध नहीं है। शरीरमें वस्त्र ग्रहण करनेसे ममकार आ जाता है। इस तरहसे श्रीष्टि ग्रहण करनेमें ममकार नहीं आता। श्रीष्टि भी ग्रहण करते हैं तो वह रोगके ग्रहण करनेमें कारणभूत है। उसमें निर्गन्धता समाप्त नहो होती। वह भी ममताके लिए नहीं है। हाँ वस्त्रका धारण ममताके लिए है। तो वस्त्र धारण करके जो संयम है वे मुक्तिका कारण नहीं हो सकते। तो जो-जो लोग वस्त्र पहिने हों उन उनका मोक्ष नहीं। स्त्रीजनोंमें निर्वस्त्रता कभी सम्भव ही नहीं है, स्त्रीजनोंके मुक्तिका सर्वथा निषेध है। मुक्ति होना तो पुरुषोंमें ही सम्भव है। पुरुष ही निर्गन्ध होकर वीतरागी होकर अनन्त ज्ञान दर्शन, आनन्द, शक्तिके चतुष्टयको प्राप्तकर मुक्त हो जाते हैं।

उत्कृष्ट संयमके लिये वस्त्रकी अवैधता—मोक्षके साक्षात् उपायोंमें परम नैग्रन्थ अवस्थाकी आवश्यकता है वहाँ वस्त्रादिक न चाहिये। इसपर शङ्खाकारने यह कहा था कि जैसे पिछो श्रीष्टि आहार इनका ग्रहण करते हैं इसी प्रकार वेदनाप्रतिकारके लिए वस्त्रको भी ग्रहण कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धमें यह कहा गया कि वस्त्र तो जंमुरक्षाके काम नहीं आते प्रत्युत 'ममेद' भावका सूक्त है, किन्तु ये श्रीष्टि और पिच्छकायें जीवन व जंमुरक्षाके लिए हैं, क्योंकि इनमें ममताभाव नहीं आता है और फिर कोई जब उत्कृष्ट निर्गन्धता आवश्य होता है तो फिर पिछोकी भी जरूरत नहीं रहती। जैसे जिन्होंने ६-६ माहका योगका धारण किया, एक-एक वर्षका तप-अव्रण किया था और तपश्चरणके बाद मुक्त हो गए तो वहाँ पिच्छकाका क्या ग्रहण है? और आहार, श्रीष्टि आदिक सिद्धान्तके अनुसार लिए जायें जिनके उद्दगम आदि दोष नहीं लगते वे रत्नत्रयकी आराधनाके ही कारण बनते हैं। ऐसे निर्दोष रत्नत्रय की आराधनाके ही कारण बनते हैं। ऐसे निर्दोष रत्नत्रयकी आराधनाके हेतुभूत आहार श्रीष्टि आदिक ग्रहण किए जाते तो उससे मोक्षहेतु नष्ट नहीं होता, क्योंकि ऐसे आहार श्रीष्टिके ग्रहणमें रागादिक अन्तरंग परिग्रह भी नहीं उत्पन्न होते और बहिरंग परिग्रह भी नहीं आते। जैसे कि वस्त्रमें कोई शृङ्खालकी बात होती है तो कुछ मनको ध्यासक्त बनाना जाता है तो उसमें परिग्रहकी बात आती है, पर इसमें परिग्रह की बात नहीं है। ये तो मोक्षके हेतुके उपकारक ही हैं।

सविधि आहा ॥ दिके ग्रहणमें अवधाताका अभाव – आहार ग्रहण न करें तो जीवन न रहे जीवन न रहे तो बीचमें आत्मघात हुआ तो न जाने क्या भव मिले, साधना न बन सकेगी । आहार ग्रहण किए बिना यदि बीच कालमें ही विपत्ति आगई तो आत्मघात बन गया । पर वस्त्रमें तो किंवी पुरुषके लिए ऐसा नहीं है कि वस्त्र ग्रहण न करे तो उसकर आपत्ति आये या आत्मघाती बने और आहार तो त्याग भी दिया जाता है । कोई षष्ठ उपवास करता, कोई षष्ठभक्त त्याग करता, कोई अनेक उपवास करते तो मुमुक्षुजन वस्त्र भी त्याग देते हैं पर स्त्रियोंके द्वारा वस्त्र नहीं त्याग जाते आहार श्रीष्टिं लेते हैं पर त्याग भी तो दिया जाता है ऐसा स्त्रियोंके लिए वस्त्र का प्रसङ्ग नहीं आता कि स्त्री जन वस्त्र लेकर कभी उन समस्त वस्त्रोंको त्याग भी देती है । इससे भूँकि स्त्रियों निर्गंथतामें नहीं आ सकती, उनमें सबस्त्र संयम रहता है अतएव उनका संयम मोक्षका कारण नहीं है ।

वस्त्र ग्रहणमें मूर्च्छाका अपारिहार होनेसे महाब्रतकी श्रकल्प्यता – अब शंकाकार कहता है कि वस्त्रके सिवाय बाकी समस्त परिग्रहोंका त्याग होनेसे इन स्त्रियों के महाब्रत हो जाता है । सबका त्याग हो गया तो निर्गंथ अवस्था आ गयी, एक वस्त्र को छोड़कर सबका त्याग होनेका नाम निर्गंथता है । यदि ऐसा कहोगे तो हम ऐसा कह देंगे कि लोभ कषाय के श्रालावा श्रन्य सब कषायोंका त्याग कर देनेसे अकषाय हो जायेगे । वस्त्र ग्रहण करने पर भी भ्रताका परिणाम नहीं है, ऐसी निर्गंथता रह जायगी यह बात सम्भव नहीं है । कोई बुद्धिपूर्वक हाथसे गिरे हुए वस्त्रको उठाये, उरे और कहे कि मेरे मूर्च्छा नहीं है उस बाता कौन चेतन श्रद्धान कर सकेगा ? वस्त्रग्रहण करें और किर भी कहें कि मूर्च्छा नहीं है, ममता नहीं है यो यों स्त्रीको भी रखे । काम सेवन करे और कहे कि मेरे इच्छा नहीं है तो ऐसा भी अनिष्ट प्रसंग फिर हो सकेगा, इसलिए वस्त्रके ग्रहण करनेमें दोनों प्रकारकी निर्गंथता नहीं रहती । न बाह्य परिग्रहों का त्याग बना न अन्तरङ्ग परिग्रहोंका त्याग बना । जब निर्गंथता नहीं हो सकती तो स्त्रियोंके मोक्ष नहीं हो सकता ।

स्त्रियोंमें बाह्याभ्यन्तर आकिञ्चन्य न हो सकनेसे स्त्रीमुक्तिकी असिद्धि भेया ! जी भी नवीन कार्य होता है वह कारणजन्य होता है क्योंकि कार्य होनेसे । कुछ भी चीज बनाई जाती है, तो कारणोंसे बनती है । मोक्ष मायने छुटकारा । पहिले छुटकारा न था, अब छुटकारा हो जाय, नवीन स्थिति है, एकदम परिवर्तित जो स्थिति है, यद्यपि उसमें शुद्ध आशय है लेकिन अशुद्धसे एकदम शुद्ध अवस्थामें आना यह तो नवीन कार्य है, वह बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग कारणपूर्वक होगा । तो मोक्षके लिए अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग कारण क्या है ? आकिञ्चन्य । बाह्य और अन्तरङ्ग-आकिञ्चन्य होना यहीं है मोक्षका हेतु । स्त्रियोंमें ये दोनों ही आकिञ्चन्य नहीं रह सकते, फिर कैसे मोक्ष हो ? तो जो हेतु दिया गया कि स्त्रियोंके मोक्ष होता है अविकल

संथम होनेसे तो यह बात असिद्ध है उसका कारण पूर्ण नहीं मोजूद है इसलिए मुक्ति नहीं है ।

आगमसे भी स्त्रीमुक्तिकी सिद्धिका अभाव - यह भी नहीं कह सकते कि आगमसे स्त्रीमोक्ष सिद्ध हा जायगा । स्त्रियोंकी मुक्ति बनाने वाला कोई आगम नहीं है । शंकाकार जिसे आगम मानता है वह तो आगम मानता रहे पर आगम तो वही माना जायगा जो दोनोंके द्वारा सम्मत हो । यह भी शंका नहीं कर सकते कि दिग्म्बर सिद्धान्तके आगमसे भी यह सिद्ध है कि स्त्रियोंको भी मोक्ष होता है क्योंकि यह लिखा है - नकिंपुं वेदं वेदंता जो पुरिसः खबगसेदिमः रुदा, सेसादये एवि तहा भाण्य-वजुता य सिज्जति । अर्थात् पुरुष वेदका अनुभव करने वाला पुरुष क्षपक श्रेणीपर आरूढ़ होकर मोक्ष जाता है और स्त्रीवेद नपुंसक वेदसे भी ध्यानमें उपयुक्त होकर मोक्ष जाता है । करणात्युयोगमें बताया है कि स्त्री वेदका उदय ६ वें गुणस्थान तक है, पुरुष वेद भी ६ वें गुणस्थान तक है । ८ वें गुणस्थानमें क्षपक श्रेणी प्रारम्भ होती है । जब स्त्रीवेदसे क्षपक श्रेणीमें चढ़े और मुक्त हो गए तो स्त्रीमुक्ति तो सिद्ध हो गयी । समाधान देते हैं कि इसका अर्थ यह है कि साधु पुरुषोंके द्रव्यसे तो सब पुरुष-वेदी ही हैं लेकिन भाववेदकी अपेक्षा किसी साधुके स्त्रीवेदका उदय है किसीके पुरुषवेदका और किसीके नपुंसक वेदका । तो जिनके स्त्रीवेदका उदय है वे उत्कृष्ट परिणामोंमें आकर क्षपक श्रेणी माड़ ले तो ६ वें गुणस्थानमें स्त्रीवेदका क्षय करके मुक्त हो जायेंगे । क्षय तो दोनों वेदोंमें करना यड़ता है पर जिनके स्त्रीवेदका उदय है वे पहिले अन्य वेदोंका क्षय करके फिर स्त्रीवेदका क्षय करके मुक्तिका उपाय धारते हैं तो इससे स्त्रीमुक्ति सिद्ध नहीं हुई । पुरुषोंमें ही मोक्षकी सिद्धि होती है । समाधान में यह कहा गया है कि इसमें जो दो श्रेणीयां हैं उपशम श्रेणि व क्षपक श्रेणि, सो उपशमश्रेणिमें भी तीनों वेदका सम्बन्ध है और क्षपक श्रेणीमें भी तीनों वेदोंका सम्बन्ध है सो, उदय तो भावोंका हुआ करता है द्रव्यका उदय नहीं होता । द्रव्य, शरीरमें यह पुरुष है यह स्त्री है इस प्रकारका येद चराने वाला कर्मोदय कोई नहीं माना गया । पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसक वेद ये मोहनीय कर्मके उदयसे होते हैं नाम-कर्मसे नहीं । ये सब जीव विपाकी प्रकृतियाँ हैं ।

अस्त्रीत्व हेतु और एक आगमांशोद्धरणसे स्त्रीमुक्तिनिरसन अब अनुमानसे भी समझ लीजिये कि स्त्रियोंमो मुक्ति नहीं है क्योंकि वे स्त्रियाँ हैं अन्यथा स्त्रीपिण्ठा उनमें न होता । आगममें यह बताया गया इतेऽन्वर सिद्धान्तमें भी रत्नत्रय की आराधनामें मुक्ति जघनमसे तो ७-८ भवसे होती है और उत्कृष्टसे दो तीन भवसे होती है । यहाँ रत्नत्रयकी आराधनामें मुख्यतया सम्यक्त्व लिया जाय तो इसका अर्थ यह है कि उसकी मुक्ति उसी भवमें हो जाय ऐसा नहीं हो सकता है । तो सम्यग्दर्शनकी आराधना की किसी जीवने और वह

जल्दी ही मोक्ष भी जायगा तो दो तीन भव तो लगेंगे ही। तो वह स्त्रीवेदमें उत्पन्न न होगा। पुरुषवेदमें उत्पन्न होकर मोक्ष जायगा। स्त्रीवेदसे मुक्ति नहीं होती। शंकाकार कहता है कि देखो अनादि मिथ्यादृष्टि भी कोई जीव है तो पूर्वभवको विशुद्धि से जब अशुभकर्मोंकी निर्जरा कर दिया तो रत्नत्रयकी आराधना करके मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। इसमें कोई विरोध नहीं है। समाधान देते हैं कि अशुभकर्मोंकी निर्जरा करे। उसकी ही तो यह बात है। और अशुभकर्मोंकी निर्जरा हो तो इसका अर्थ है कि स्त्रीवेदादिक अशुभकर्मोंकी निर्जरा हुई तब फिर स्त्रीवंध नहीं रहा, अब रत्नत्रय की प्राराधना करके मुक्ष ले जायेंगे। यह बात श्वेताम्बरोंने इसपर कहा कि रत्नत्रय की प्राराधना करके दो तीन भवोंमें ही जीव मोक्ष जाता है। तो इसके खिलाफ भरतवकर्त्ता आदिकी तरह ऐसे जीव पाये गए हैं कि अनादि मिथ्यादृष्टि थे, उस ही भवमें सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया उस ही भवमें सम्यकचारित्र किया और उस ही भवमें मुक्ति प्राप्त की। जब अनादि मिथ्यादृष्टि भी उससे पहिले भवमें समस्त कर्मों को दूर करके हुआ ना, अब यह निकट भव्य, और उसी भवमें रत्नत्रयकी आराधना करे तो मोक्ष हो जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि पूर्व भवमें जो अशुभकर्म निर्जीरण कर चुके उसकी बात कह रहे हैं कि जो स्त्रीवेद अशुभकर्म है उनकी निर्जरा हो गयी, अब स्त्रीवेदके रूपमें उत्पत्ति नहीं हो सकती। अर्थात् सम्यग्ज्ञित जीव मरकर स्त्री पर्यायमें उत्पन्न नहीं होता। यह सिद्धान्त दोनों जगह समान है। सम्यक्त्व होनेके बाद यह जीव स्त्री पर्यायमें नहीं उत्पन्न होता। इससे यह सिद्ध हुआ कि स्त्री वेद अशुभकर्म है उसका निर्जरण न होनेपर फिर हूँपरे भवमें स्त्रीवेदसे मुक्ति कही गई है। स्त्रीवेदकी निर्जरा हो जायगी तो स्त्रीपर्यायमें मोक्ष कहां सम्भव हुआ।

**पुरुषादन्यत्वात् स्त्रीमुक्तिका निषेध** — स्त्रीपर्यायसे मोक्ष नहीं है क्योंकि वह पुरुषसे भिन्न है। जैसे नपुंसक पुरुषोंसे भिन्न ज्ञाते हैं, उनकी भी मुक्ति उस पर्याय से नहीं है। नपुंसक मोक्ष जायें, यह तो श्वेताम्बरोंने भी नहीं माना, ऐसा माननेका कारण यह हो सकता कि हिजड़ोंको संख्या बहुत थोड़ी है, उनके बहुमत हो नहीं सकता इसलिए नपुंसकमें मोक्ष जाननेकी जरूरत पड़ी। स्त्रियोंको संख्या पुरुषोंसे भी भी अधिक है एक तो पुरुषोंकी भाँति स्त्रियोंकी बहुसम्मति होनेसे ये आगम बना दिये और स्त्रियोंको भी यदि मोक्ष कहा जाय तो वस्त्रसहित साधुवोंके समर्थनमें बल मिलेगा कि साधुजन वस्त्र भी पहिने रहें तो भी ऐसा संघर्ष पा सकते हैं जिससे उन्हें मुक्ति प्राप्त हो। लेकिन चूँकि वे पुरुषोंसे अन्य हैं इसलिये उनको मुक्ति नहीं। अन्यथा पुरुषोंसे अन्य होनेपर भी स्त्रियोंको मुक्ति कही जाय तां नपुंसकोंको भी मोक्ष मानो। यह भी नहीं कह सकते कि पुरुषोंका मोक्ष तो श्वेताम्बर दिग्म्बर दोनों सिद्धान्तोंने माना है। पर जहाँ केवल एकका ही आगम है स्त्रीमुक्ति बताने वाला वह आगम दिग्म्बरके प्रति प्रमाणाभूत नहीं हो सकता। क्योंकि आगमकी प्रमाणता देकर कोई

वस्तुस्वरूप सिद्ध किया जाना हो तो वही आगम बताया जा सकता जो वादी प्रतिवादी दोनोंके द्वारा सम्मत हो ।

मोक्षकी उत्कृष्ट ध्यानकलनता होनेसे स्त्रीमुक्तिका निषेच - अब अन्य भी मनुष्यान कीजिये ! दिव्योंके माझ नहीं है कर्त्ताके मोक्ष उत्कृष्ट ध्यानका फन है । मोक्ष ऊँचे ध्यानके फन है सो ऊँचे के दिव्योंके उत्कृष्ट ध्यान नहीं बनता, अतः वे उत्तरकमें भी नहीं जा सकते । उत्कृष्ट प्रतिवान हो रोक्षध्यान हो, उक्षका फन है समूप नरकमें गमन । तो ध्यानकी उत्कृष्टा चाहिए । मनुष्य नरकमें लानेके लिये उत्कृष्ट व्रन्दध्यान एवं शुक्रध्यानकी आवश्यकता है । ये बीजे दिव्योंके बन नहीं सकती । इससे सिद्ध है कि दिव्योंके मोक्ष नहीं है ।

देहवर्लंकण्पसे स्त्रीमुक्तिनिषेचकी सूचना — आगममें स्त्रीशरीर और पुरुष शरीरमें बड़ा अन्तर बताया गया है । लब्धरंगरीय मनुष्योंकी उत्तरति दिव्योंके शरीरसे होती ये मनुष्य गम्भज नहीं होते । मनुष्य गतिका उठाने उदय है जो लब्धपर्याप्तक मनुष्य होते हैं । वे मनुष्य हैं और जहाँ तक कि सज्जी परेन्द्रिय हैं भवते ही वे दर्शावमें १८ बार जन्म-परण कर लें और उनके थोड़े ही भव होते हैं लेकिन इस मनुष्यभवमें वे अधिक समय चल नहीं सकते कि दो चार मिनट चलते रहें, पर हो जाते हैं सज्जी । वे सज्जी हैं, पञ्चवेन्द्रिय हैं, सम्भूर्वन वाले लब्धपर्याप्तक मनुष्य । दिव्योंकी कोख आदिसे उत्तरन होते हैं । यह भैइ है जो स्त्री पुरुषके अन्तर बताने वाले हैं तो दिव्यों को मुक्तिकी बात कहना यूक्त नहीं होती है ।

स्त्रीमुक्तिनिषेचक कारणोंका उपसंहार - दिव्योंकी मुक्तिका निषेच वे अनेके कारण सिद्ध करनेमें समर्थ हैं । एक तो उनके मोक्षके देतुमृत संत्रममन्त्रधी समस्त कारण नहीं चल पाते हैं । मोक्ष होनेमें जो जो साधन, जो जो परिणाम चाहिए वे दिव्योंमें सम्भव नहों हैं । त उनमें उत्कृष्ट विशुद्ध बनती है न उनमें उत्कृष्ट संहनन बन सकता है । इसरे उनमें मायाकी बहुतना रहती है, उत्कृष्ट मायाकी अधिकारी दिव्यों अति गोपनीय मायाचार करनेमें पुरुषोंसे भी अधिक समर्थ हैं । ज्ञानादिका परम प्रकष दिव्योंमें सम्भव नहीं है । दिव्योंकी श्रुतकेवली तक की बात दिव्योंको नहीं कही गयी तो केवल ज्ञान ही बात कहना कहना यह कौन युक्त हो सकता है । कह दिए अति विशेषका कारणभूत संयम दिव्योंमें नहीं होता तो मुक्तिका साधन भूत संयम कहाँसे बने ? ऊँचे दिव्योंका संयम सवस्त्र संयम है अतः मुक्तिकी पात्रना नहीं । जैसे पुरुषोंमें बताया कि वे सवस्त्र संयम भी लेते हैं, इस प्रकारकी दो बातें दिव्योंमें सम्भव नहों हैं और स्त्रीजन चाहे सैकड़ वर्षोंकी दीक्षित हों एक दिनका दीक्षित पुरुष भी उनके द्वारा पूज्य बदनीय होता है । यह भाव भी वह सिद्ध करता

कि स्थियोंमें उत्कृष्ट संभव न ही बन सकता। वस्त्रके धारण करनेसे अनेक हिसायें होती हैं। समता आदि जगतेके बड़े भयज्ञर परियह भी लद जाते हैं। यह मेरा, यह आमुकका वस्त्र है इस प्रकारके रागदेषका बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। उस समय आत्म-विन्तनकी बात डानमें नहीं आती, समता परिणाम वहाँ नहीं रह सकता। तो वस्त्र धारण करनेके कारण ये अत्यंतरज्ञ परियह भी इस जीवमें लद जाते हैं। वस्त्र धारण करनेका कुछ यह प्रयोजन भी न नी है कि जिसके बिना जीवन नहीं ठिकता। जो जीवन संयम धारण करनेके लिए आवश्यक था। वस्त्र धारण करने आदिको बातें समतादि जागृत होनेकी सूचना देता है। घरमें हेतुमें वस्त्रका रच भी उपयोग नहीं है इससे सबस्त्र संयमपुत्तिका साधक नहीं हो सकता, यह बात युक्तियोंसे भी सिद्ध है, आगमसे भी सिद्ध है। तब यह मानना चाहिए कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति, अनन्त वीर्य आदिका पूर्णल्पेण लाभ है। वह पुरुषोंमें ही संभव है स्त्रियोंमें संभव नहीं है, यह बात भली प्रकार सिद्ध होती है।

**सूत्रका मूल प्रकरण** — यद्यपि यह प्रसङ्ग स्त्रीमुक्तिके निषेषके लिए न था, इसका मूल प्रकरण तो एक निरावरण प्रत्यक्ष ज्ञानके सिद्ध करनेका चल रहा था कि सामग्रीविशेषसे जब समस्त आवरण दूर हो जाते हैं तो ऐसे अतीन्द्रियज्ञान उत्पन्न होते हैं, जो समूर्ण रूपसे समस्त सद् पदा गोंको जानते हैं। प्रत्यक्षज्ञानकी सिद्धिके सम्बन्ध में अनेक क्रमशः विवाद उत्पन्न होते—होते उन विवादोंके सिलिक्सेमें यह विवाद चला कि मोक्षका लक्षण यड़ां मान लोजिये अनन्त ज्ञानादिक चतुष्टयके लाभका लाभ मोक्ष है, किन्तु यह मोक्ष पुरुषोंके ही सम्भव है, स्त्रियोंके मोक्ष सम्भव नहीं। इस प्रकारका विवाद उत्पन्न होनेमें यह प्रमाणित किया गया है कि स्वरूपलाभ उत्कृष्टरूपसे होनेका नाम मोक्ष है, और वह मोक्ष पुरुषोंके ही सम्भव है।

**आत्महितके पूर्धमें वस्तुद्वयकी परीक्षाका आवश्यक स्थान** — आत्माका हित चैतन्यमध्ये शुद्ध प्रवृत्तनेसे है, अर्थात् रागद्वेष मोह विकल्प विचार हन सबसे रहित केवल जाननमात्र रहनेमें है। जिसमें केवल अनेक आपके स्वरूपका जानन ही चलता है रहता है और सहज ही जो चाहे जानन स्वभावके कारण अन्य पदार्थ जानन में चलते रहते हैं ऐसी स्थितिमें ही आत्माका हित है। यह स्थिति कैसे प्राप्त हो इस के निये दो तरहसे प्रयुक्ति लगानी होती है—एक तो सत्यका आपह रखनेसे और दूसरे तत्त्वोंका असहयोग करनेसे यह स्थिति प्राप्त होती है। अर्थात् अपना जो सत्य स्वरूप है, अपने चैतन्यमात्र अस्तित्वमें जो कुछ स्वरूप है उस रूप ही अपने आपको मानने और जानने और प्रकार रहनेमें अनन्त एक आपह हो, संकला हो, यही सात्र एक स्विते। एक तो इम सत्यापहकी जरूरत है, दूसरे आत्मामें जो पश्चत्त्व, औराधिक भाव या बाल्क क्षेत्रमें स्थित पर तत्त्व हैं, उन सबके साथ अपहयोग नहीं,

वे सब अन्तर्थं रूप हैं, भिन्न हैं। उनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। मैं उनसे निराला एक चेतन्य मात्र हूँ। इस ही सत्यके आग्रहके बलसे परस्तवोंका असहयोग हो जाता है। ये दो बातें जब क्रमसे व युगपत हो जाती हैं तब आत्मस्वरूपमें मनता होती है जिस में ज्ञाता दृष्टाको रिथति बनती है। तो ज्ञातृत्व स्थिति हितरूप है। और उस स्थिति के पानेके लिए सत्यका आग्रह और असत्यका असहयोग चाहिये। अब ये दोनों बातें कैसे हों? इसीको इन शब्दोंमें कह लीजिये—उपादान और हानि। सत्यका तो आग्रह हो और असत्यका त्याग हो। ये दोनों कैसे हो इन दोनोंका उपायभूत है उपेक्षा और इन सबसे सम्बन्ध रखने वाली बात है अज्ञाननिवृत्ति। ये सब कैसे हों? इस सब का उपाय है—वस्तुके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो। तो इन सब हितरूप बातोंके लिए यह आवश्यक हुआ कि हम पदार्थोंके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करें, इसीको कहते हैं अर्थ संसिद्धि। पदार्थकी समीक्षा सिद्धि। जैसा उनका स्वरूप है उस प्रकार उनका परिचय होजाना इसे कहते हैं अर्थसंसिद्धि। अर्थसंसिद्धि होती है परीक्षासे। जब हम सभी पदार्थोंके स्वरूपका परिचय करें तो उनमें परीक्षा होगी। यह बात ऐसी है क्या? तो उनकी परीक्षा होना आवश्यक है क्योंकि परीक्षा किये बिना जो भी ज्ञान किया वह ज्ञान दुर्बल रहेगा और जहाँ परीक्षापर उत्तीर्ण हो गया वह ज्ञान विवेनिषेधसे अस्तिनास्तिसे जब उसका भली प्रकार निरांय हो गया तब वह ज्ञान दृढ़ हो जाता है। परीक्षा होती है प्रमाणणसे। तो कल्याणके लिए परीक्षा सबसे पहले आवश्यक दृढ़। परीक्षासे ही हम यह निरांय कर सकते हैं कि यह मार्ग हितरूप है और यह अहितरूप है। पदार्थका स्वरूप इस प्रकार नहीं है, पदार्थका स्वरूप ऐसा ही है।

परीक्षामुखसूत्रप्रवचनका सचार—आत्महितके पंथमें वस्तुत्वकी परीक्षा आवश्यक होनेसे पूज्यश्रो मालिङ्यवनन्दो आचार्यने परीक्षाका जिसमें दिग्दर्शन है परीक्षा से सुन्दर—सुन्दर उपायोंका जिसमें दिग्दर्शन है, जैसे कि शरीरका श्रेष्ठ अङ्ग मुख है इसी तरह परीक्षाके उपायोंमें जो श्रेष्ठ उपाय है उनका वर्णन करने वाले सूत्रोंकी रचना की है और इसी कारण इस ग्रंथका नाम परीक्षामुखसूत्र है। इस परीक्षामुखसूत्रपर अनन्तवीर्याचार्यने प्रमेयरत्नमाला टीका लिखी है। उन सूत्रोंमें जो प्रमेय भरा है, उन सूत्रोंमें जो प्रमेयका संकेत होता है जो कि रत्नकी भाँति है, ऐसे प्रमेयरत्नोंकी माला बनाई है और फिर इसी सूत्ररत्न विस्तृत टीका प्रशाचन्द्राचार्यने की है, प्रमेयकमलमार्त्तेष्ठ अथात् जो और भी मर्म प्रमेयमें भरे हुए हैं उन सब मर्मों कमलोंको विकसित करनेके लिए यह मार्त्तेष्ठ अथात् सूर्यकी तरह है। तो परीक्षाप्रधान इस ग्रंथमें वर्णनका प्रारम्भ किया गया है प्रमाणके स्वरूपके परिभाषण से। तो प्रथम ही प्रमाणके स्वरूपके परिभाषणसे सम्बन्धित समस्त तर्क वितकोंका प्रतिपादन है।

प्रमाणके स्वरूपका परिभाषण—प्रमाण होता है ज्ञान और ऐसा ज्ञान जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये। ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है क्योंकि ज्ञानमें

ही यह सामर्थ्य है कि वह हितकी प्राप्ति कराये और अहितका परिहार कराये, अतएव ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है। प्रमाणके स्वरूपके सम्बन्धमें अनेक विवाद उठे, किसीने कहा कि बहुतसे कारक जुड़ जायें उसका नाम प्रमाण है। जैसे प्रकाश आत्मा इन्द्रिय ये सारे इकट्ठे हो गए तो ये प्रमाण बन गये, पर सब इकट्ठे हो जानेपर भी क्या प्रमाणता उन सब कारकोंमें है अथवा किसी एकमें है? सब मिल करके प्रमाणका रूप नहीं बना। प्रमाणका रूप बनता है किसी एक में। जैसे प्रकाश इन्द्रिय, आत्मा ये तीन इकट्ठे हुए तो ज्ञान तो बना परन्तु यह तो बतात्रो कि वह ज्ञान वह प्रमाण किसी एकका परिणामन है अथवा तीनोंका? जो अचेतन है उसमें प्रमाणता नहीं आ सकती तब किसीने यह छेड़की कि इन्द्रिय और पदार्थका जो सम्बन्ध है वह प्रमाण है, यह भी यों ठीक नहीं बैठता या कि इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध न होनेपर भी ज्ञान होता है और कभी कभी ज्ञान नहीं भी होता। ज्ञान करने वाला कोई जुदा ही तत्त्व है। तब किसीने यह प्रसङ्ग छेड़ा कि इन्द्रियका व्यापार प्रमाण है, सम्बन्ध प्रमाण नहीं है। क्योंकि उसके प्रामाण्यमें तो सङ्ग देखा गया। कभी इन्द्रियार्थका सम्बन्ध होनेपर भी ज्ञान नहीं होता, कभी सम्बन्ध बिना भी होता, पर इन्द्रियके व्यापार बिना तो ज्ञान नहीं होता, यह भी बात ठीक नहीं बैठी क्योंकि ये इन्द्रियाँ अचेतन हैं, इनके हृनन चलनका व्यापार भी एक अचेतन किया है, वह भी ज्ञानरूप नहीं है, वह भी इस ज्ञाताके ज्ञानके बननेमें मात्र बाह्य साधक कारण है तब किसीने कहा कि आत्माका व्यापार प्रमाण है लेकिन वह आत्मा है अज्ञानी अचेतन। उसका व्यापार अचेतन है। तो अचेतनरूप व्यापार है तो प्रमाण नहीं हो सकता और चेतनरूप यदि व्यापार है तो वही बात आयी, ज्ञानप्रमाण। तब किसीने और-और प्रकारसे भी प्रमाणके सम्बन्धमें बात रखी, लेकिन जिद्द यह हुआ कि जो स्वपरव्यवसायी ज्ञान है वही प्रमाण हो सकता है। प्रमाणका प्रयोजन है हितकी प्राप्ति हो और अहितका परिहार हो। इनदो बातोंके ऊरनेमें समर्थ ज्ञान ही होता है।

**ज्ञानका स्वपरनिर्णयाकृत्व -** वह ज्ञान निर्णयात्मक होता है वहाँ संशय विषय अनध्यवसाय ये दोष नहीं होते। जिस ज्ञानमें निर्णय भरा हो वही ज्ञान प्रमाणरूप होता है। तो निर्णयकी बात सुनकर यहाँ क्षणिकवादी एक यह आशङ्का रखते हैं कि निर्णय तो माया है, निर्णय तो अप्रमाणी है, सत्य तो एक निविकरण तत्त्व है, वही वास्तविक प्रयत्न ज्ञान है। जो ज्ञान निर्णय रखता हो वह सविकल्प है और मायारूप है। ज्ञान तो एक निविकरण चेतनरूप रखा करता है, पर यह बात यों नहीं बनती कि निर्णयात्मक ज्ञानके बिना वस्तुस्वरूपकी पुष्टि नहीं हो सकती। क्या मायारूप ज्ञानसे वस्तुस्वरूपकी परीक्षा होगी? तब उस वस्तुस्वरूपकी बात सुनकर कोई बोल उठा — तो बतलाओ वस्तुस्वरूप क्या है? और वही प्रमाण है और वही वस्तुस्वरूप है, अन्य कुछ नहीं है और ज्ञानके साथ कुछ न कुछ शब्द उठा करते हैं। शब्द सहित ज्ञान बनता है। तो ज्ञान भी क्या चीज है? शब्द ही ज्ञान कहलाया! शब्दात्मक जगत

है, शब्दात्मक ज्ञान है, इसलिए एक शब्दाद्वैत ही तत्त्व है। शब्दानुविद्धना ज्ञानमें होती है, यह एक पक्ष आया, लेकिन यह बात युक्त यों नहीं है कि जितने शब्दानुबंधी ज्ञान है वे सब छृद्यस्थोंके ही कोई कोई ज्ञान हैं, वहाँपर भी ज्ञान और शब्द एक नहीं हो जाते। वहाँ भी वे दो तत्त्व हैं लेकिन ज्ञानके साथ श्रुतबोधका व्यक्त करने वाले अत-जंलप होते हैं, वहाँ भी प्रामाण्य बोधमें है। तब यही सिद्ध हुआ कि स्वपरव्यवसायी ज्ञान ही प्रमाण होता है और उसमें स्वका भी निर्णय भरा है। जो भी ज्ञान पदार्थको ठीक समझता है वह अपना निर्णय करता हुआ ही रहता है। काईसा ज्ञान ऐसा नहीं है कि जो पदार्थकी तो व्यवस्था बनाये और अपने बारेमें संशय रखे कि यह जो ज्ञान हुआ है वह सही या नहीं। अगर ज्ञानमें संशय है तो उस ज्ञानके द्वारा जिस पदार्थको जाना है उस पदार्थमें भी संशय हो बैठेगा, इसलिए ज्ञान वही प्रमाण है जो स्वका निर्णय रखे और परका भी निर्णय रखे।

सर्थस-द्वावके विरोधपर विचार—यहाँ किसीने यह भी क्षेत्र की कि स्व और पर ऐसी दो बातें कहीं हैं ही नहीं। जो कुछ है वह सब एक है और वह ब्रह्मस्वरूप है लहुके अतिरिक्त जगतमें और कुछ नहीं है, लेकिन ब्रह्म ही केवल एक तत्त्व है तब वही रहा आये, फिर यह सब कुछ दश्यमान समाधाम ये व्यवहार ये विड्म्बनायें ये खट-पट कहांसे हो उठे? कोई कहे कि ये सब मायाये उत्पन्न हुये तो माया भी कोई चीज है ना, अगर नहीं है, असत् है तो असत्से कुछ नहीं हुआ करता। तब एक ही तत्त्व है यह बात तो न रही। तो इसपर अणिकवादी बोले कि ब्रह्म तो तत्त्व नहीं, किन्तु एक ज्ञान ही तत्त्व है। जो कुछ है वह सब एक है। जो कुछ है वह सब ज्ञान है और वह क्षण-क्षणमें नया-नया पैदा होता है। जो दिव रहे हैं भीट ईट मकान बगरह, ये सब क्या हैं? ये कुछ नहीं हैं। ये हमारे ज्ञानकी कल्लोल हैं, सब ज्ञानात्मक हैं, सब प्रतिभासस्वरूप हैं। तो ज्ञान ही मात्र एक तत्त्व है, लेकिन यह बात नहीं बनती कि ज्ञानका कोभ फिर क्या रहा? ज्ञान किसे कहते हैं? ज्ञान ज्ञाननेको कहते हैं और ज्ञानना किसी विषयका ही हुआ करता है। कुछ भी बात ज्ञेय तो होना ही चाहिये। ज्ञयके बिना ज्ञानका कोई स्वरूप नहीं बनता। इस विषयपर बहुत चर्चा चली। तब उसी सिद्धान्तका कोई दूसरा अनुयायी कहता है कि ज्ञान ही तत्त्व है, यह तो समझना माध्यम है, यह भी इस रूपमें ठीक नहीं किन्तु शून्य ही तत्त्व है। जब हम उस ज्ञानके स्वरूपपर विचार करते हैं कि वह ज्ञान केवल जिसमें कोई परपदार्थ नहीं है, प्रतिभास में ज्ञान ही ज्ञान है तो ऐसी दृष्टिमें कुछ भी नजर नहीं आता तो आखिर ज्ञानमात्र ही तत्त्व है यह तो उपाय है पर तत्त्व वास्तवमें शून्य है। उस शून्यका परिज्ञान करनेसे ही आत्माके संकट दूर होते हैं। तब इसी सिद्धान्तका एक अनुयायी बोला कि शून्य ही तो नहीं। शून्य ही सब कुछ है तो फिर करना क्या रहा? शून्य तत्त्व नहीं किन्तु ऐसा चिन्तित ज्ञान जिस ज्ञानमें ये समस्त आकार प्रतिविभिन्नत होते हैं ऐसा चित्रि विनित्र ज्ञान ही एक स्वरूप को रखकर तत्त्व बनता है। इतना कुछ वर्णन करनेके बाद जो

कुछ भौतिकवादी लोग सुन रहे थे उनसे आखिर न रहा गया तो बोले कि यह सब प्रलाप मात्र है। ज्ञान क्या है? एक विद्युत है, जिजली है जो कि पृथ्वी, जल, अग्नि वा यु आदिक अनेक संयोगोंसे उत्पन्न हुई है उसका कोई अलग अस्तित्व नहीं है लेकिन यह बात भी यों सिद्ध न हो सकी कि कोई किसी रूप परिणामता है तो अपनी जातिका उल्लंघन न करके ही परिणामता है। ये भौतिक पदार्थ स्वयं ज्ञानशून्य हैं। ये मिलकर परिणाम में तो ज्ञानरूपताको उत्पन्न नहीं कर सकते।

**ज्ञानके स्वत्वपर चर्चा—** इस ज्ञानके सम्बन्धमें जिसका कि स्वरूपके परिभाषणके द्वारसे वर्णन किया है। अनेक लोग अनेक प्रकारके आशय रखते हैं। किन्हींका आशय है कि ज्ञान क्या है? पदार्थका आकार है वह ज्ञान है। ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होते हैं और पदार्थका आकार लिए हुए होते हैं। ज्ञानका आधारभूत कोई स्वतंत्र प्रारम्भ नहीं है। तब इन साकार ज्ञानवादियोंका भी समाधान दिया गया कि स्वयं कुछ नहीं है तो आकार आया किसमें? किसने उसको ग्रहण किया। पदार्थने आकार तो सौंपा पर ग्रहण किसने किया? उस शाहक तत्त्वको माने बिना तो यह बात बन नहीं सकती और आकार सौंपनेकी भी बात भी अयुक्त है यों संक्षेप रूपसे इन सब अज्ञानवादियों का कुछ संकेत दिया है। इसके स्वरूप और विस्मवादोंमें तो बहुत समय लगा है, पर एक साधारण रूपसे यहाँ तक यह सिद्ध किया गया कि ज्ञान ही प्रमाण है और और और उस ज्ञानमें दोषुली प्राभा है स्वका भी निर्णय रखे और परको भी।

**१ ज्ञानप्रयोगमें स्वपर प्रकाशकत्वकी भाँकी—** जैसे लोग बोलते ही हैं कि मैं अपने ज्ञानके द्वारा इन जीवोंको जानता हूँ तो इसमें कितनी चीजोंका प्रतिभास आ गया? मैं जानता हूँ, इसमें मैंका भी प्रतिभास हुआ। जीवोंको जानता हूँ, तो जीवोंको भी प्रतिभास हुआ ज्ञानके द्वारा जानता हूँ तो उसे निजी साधनका भी प्रतिभास हुआ। किसीने यह कहा कि ज्ञान स्वयं—स्वयंको नहीं जानता, अन्य ज्ञानके द्वारा जाना जाता है, लेकिन जो ज्ञान स्वयंको न जाने, दूसरे ज्ञानके द्वारा जाना जाय उस ज्ञानमें स्वष्टता नहीं आ सकती। तथा अभी जिस ज्ञानसे हमने जाना उस ज्ञानकी जानकारीके लिए अन्य ज्ञान चाहिये और उस अन्य ज्ञानकी जानकारीके लिए अन्य ज्ञान चाहिये, तो ज्ञान का ही स्वरूप बनना कठिन हो जायगा, फिर पदार्थोंके जाननेका तो अवसर ही कब? अर्थात्? इससे यह निर्णय रखना चाहिये कि ज्ञान ही प्रमाण है और ज्ञानसे ही वस्तु के स्वरूपकी परीक्षा है। जैसे दीपक है वह अपने आपको भी उजेलेमें रखता है और अन्य पदार्थोंको भी ज्ञान उजेलेमें करता है, इसी तरह ज्ञान स्वयंका भी ज्ञान करता है और अन्य पदार्थोंका भी ज्ञान करता है।

**ज्ञानका लुप्ततः व परतः प्रामाण्य—** यह ज्ञान ठीक है ऐसी ठिकाई अर्थात् इसका प्रामाण्य कभी-कभी तो स्वयमेव हो जाता है। जिन चीजोंको हम रोज़-रोज़

देखते रहते हैं, बहुत बार जानते रहते हैं उन चाँडोंका जब कभी हम ज्ञान करते हैं तो उनकी प्रमाणता हमारे ज्ञानमें स्वयमेव हो जाती है। जैसे जिस मार्गसे रोज जाते हैं तो उस मार्गमें थोड़ी दूर चलकर नदी आया कुर्वा मिलता है, वहाँ वह ज्ञान करता है कि यहाँ नदी है ही और उसका निर्णय करनेमें उसे अधिक सोचना नहीं पड़ता। तुरन्त सही ज्ञान होता है और सिज मार्गसे कभी गये ही नहीं उम मार्गसे जानेका भौका पड़ गया और लग गयी प्यासतो अब सोचते हैं कि कहीं पानीका ठिकाना हो जाय कहीं दूर पर मेडङ्कोंकी आवाज सुआयी दी, सोचा कि वहाँ जल होगा। चलता गया। आगे चल कर उसे फूटे घड़े नजर आये तो निर्णय कर लिया कि यहाँ पानी अवश्य है, थोड़ी दूर जाकर उसे कोई महिला या पुरुष पानी भरकर लिए जाता हुआ दिखा। तो उस पूरुष की प्रमाणता ८८ से हुई।

प्रमाणके भेदोंकी चर्चा ज्ञान स्व और परका जानने वाला होता है यह सिद्ध करनेके बाद फिर उस ज्ञानके भेद बताये गए हैं कि ज्ञान दो तरहका होते हैं—एक प्रत्यक्ष ज्ञान और एक परोक्ष ज्ञान। जो स्पष्ट जाने उसे प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं और जो अस्पष्ट जाने उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। किस ही साधनसे ज्ञान होता हो या तो वह स्पष्ट जानने वाला होगा या अस्पष्ट। इस तरह प्रमाणके दो भेद न मानकर क्षणिक-वादी कहता है कि प्रमाण दो तरहका तो है पर वह है प्रत्यक्ष और अनुमान। लेकिन ये भेद यों ठोक नहीं बैठते कि भेद किये जाते हैं इस ढंगसे कि जिसका भेद करना है उसका कोई शब्द नहीं, तो भेद बनता है पर प्रत्यक्ष और अनुमान इसना ही मात्र भेद करनेमें जो अन्य ज्ञान है स्मरण है प्रत्यमिज्ञान है तर्कवित्तकहि ये सब तो उसमें नहीं आये। कोई कहे कि एक ही प्रमाण है—प्रत्यक्ष जो आखिर देखा, जो नजरमें आया वही एक ज्ञान है। तो कहते हैं कि उस प्रत्यक्षकी भी सिद्ध प्रत्यक्षमात्रसे नहीं की जा सकती एक ही ज्ञान है—प्रत्यक्ष। इसका तो अर्थ है कि जो हमें जानकारीमें आया वही तो है अन्य कुछ नहीं। भला बतलावो दूसरेका जो अत्मा है उसमें भी ज्ञान है कि नहीं? उसका ज्ञान हमें कैसे हो? प्रत्यक्षसे तो होता नहीं, तुमने अत्मा जैसा भाव समझकर अनुमानसे ही तो जाना। तो न केवल प्रत्यक्ष यों कह सकते, न प्रत्यक्ष अनुमान यों कह सकते। किसीने तीन भेद किये किसीने चार पांच। किसीने प्रत्यक्ष अनुमान आगम-अर्थ पति, उपमान अभाव भेद किये पर ये सब भेद व्यक्त तर हैं व पुनरुत्त हैं। उपमान तो प्रत्यक्षज्ञानमें सामिल होता है। यदि उपमानको अलग प्रमाण मानते हो तो विशद्वाताका ज्ञान किस प्रमाणमें जायगा। अर्थात् अनुमानमें गमित होता है, अभाव सभीमें गमित होता है। जिसके द्वारा अभाव जाना है अभाव उसमें सामिल होता है।

प्रत्यक्ष ज्ञानके स्वरूपकी चर्चा—प्रत्यक्षके भेदकी कुछ आलोचना करके अब प्रत्यक्षके स्वरूपके निर्णय पर उतरें। प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो निर्मल ज्ञान हो। विशद ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। इन्हि और पदार्थके आँख और पदार्थके सम्बन्धसे प्रत्यक्ष

नहीं कह सकते । यह ज्ञान आत्मसे ही उत्पन्न होता है, कहीं पदार्थोंसे उत्पन्न नहीं होता, कहीं प्रकाश आदिक कारणोंसे उत्पन्न नहीं होता । और यह ज्ञान जब एकदेश स्थृत रहता है तब तो कहते हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष । और उसके ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मोंका सर्वथा क्षय हो जाता है, उस समय जो सर्वका ज्ञान होता है वह कहलाता है पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान । उस ज्ञानको कर्मोंने ढका है अर्थात् कर्मोंके आवरणका निमित्त पाकर ज्ञानस्वरूप निर्मल व पूर्ण अवस्थामें नहीं रहता आया है । संयमसे, सम्पत्त्वसे, तत्त्वज्ञानसे, उपायोंसे उन कर्मोंका सम्बर होता और निर्जरा होती । तब आवरणका अपाय होता और यह ज्ञान सबका ज्ञानने वाला होता है ।

**निरावरण** ज्ञानके सर्वज्ञत्वपर किये गये विरोधपर विचार—यहाँ ईश्वरकर्तृ त्वादीने यह कहा कि कर्मोंका आवरण दूर होनेसे सर्वज्ञता नहीं होती, किन्तु कोई अनादिमुक्त सदा शिव ईश्वर हो है वही सदा से सर्वज्ञ रहता आया । उस एक को छोड़कर कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता । वह सर्वज्ञ इस कारण है कि वह सारे विश्वको करने वाला है । जो सबको न जाने वह सबको कर कैसे सकता । इस सम्बन्ध में विस्तार रूपसे समाधान दिया गया कि पदार्थ इस प्रकार नहीं बना करते हैं । पदार्थोंकी योग्यतासे ही हुआ करती है । ईश्वर तो अनगत ज्ञान द्वारा आनन्द शक्तिमय विशुद्ध पवित्र चेतन है । तब प्रकृतिवादी यह बोलते हैं कि ऐसा अनादिमुक्त ईश्वर तो सर्वज्ञ नहीं, क्योंकि आवरणके दूर होनेपर हीं सर्वज्ञता प्रकट होती है । मगर वह आवरण प्रकृतिगर आया है और आवरण दूर होनेपर प्रकृति सर्वज्ञ बनता है । क्योंकि प्रकृति सबका करने वाली है, इस सम्बन्धमें विस्तारसे निराकरण होनेपर किर कोई सेवर प्रकृतिवादी कहते हैं कि केवल प्रकृति नहीं बनाती जगतको, किन्तु प्रकृतिका सहयोग पाकर ईश्वर बनता है । इस सम्बन्धमें भी विचार किया गया कि जब प्रकृतिमें भी कर्तव्यन नहीं है ईश्वरमें भी कर्तव्यन नहीं है तो मिल करके भी भी कर्तव्यन नहीं हो सकता । जब ये दोनों नित्य हैं तो नित्यमें कभी विकार नहीं होता तो इनमें सहयोगसे भी कुछ अतिशय आ नहीं सकता, कैसे यह सम्भव है कि इस जगतकी रचना बगावर इस कथसे होती चली जाय, जहाँ कोई गड़बड़ी न हो और न यह अव्यवस्था हो कि रचना प्रलय अवस्थिति सब एक साथ न हों । ये सब व्यस्थ ये तो पदार्थके स्वरूपके ही कारण हैं, और पदार्थके स्वरूपका निर्णय करनेके लिये इस ग्रन्थमें प्रतिपादन हुआ है ।

**ज्ञानके निर्णयका महत्व**—यहाँ तक प्रमाणके स्वरूपके परिभाषणसे प्रारम्भ करके यह सिद्ध किया गया कि ज्ञान हीं तक हितरूप है, ज्ञान ही प्रमाण है, उस ज्ञानका ही हमें निर्णय करना है । ज्ञानसे ही हम समस्त परपदार्थोंका निर्णय करते हैं, अतः हमें उस ज्ञानकी खोज करना चाहिए, ज्ञानका निर्णय करना चाहिए । प्रथम तो उस ज्ञानका ही स्वरूप जानें कि वह ज्ञान क्या है जिस ज्ञानके द्वारा हम इन

समस्त पदार्थोंको ज्ञानरे रहते हैं। वह ज्ञान में ही हूँ, मेरे से अलग ज्ञान नहीं है, मैं केवल ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञानस्वरूपको छोड़कर मेरा और कोई स्वरूप नहीं है। जो हित रूप है, शरण—रूप है, सर्व व्यवस्था करने वाला है, अपने लिए पूरा महत्व रखता है वह सब में ही ती है। मैं अपने आपकी शरणमें आकं तो मुझे हित मिल सकता है और मैं अपनी शरणको छोड़कर, अपने ज्ञानस्वरूपको छोड़कर बाहरी चीजोंमें संगृ तो केरी ऐसी ही घटनायें, जब भरण करना बना रहेगा जहाँ मेरा कुछ भी हित नहीं है।



अपने अपनी ऐसे करो जाए जहाँ वह नहीं है। जो हित रूप है, शरण—रूप है, सर्व व्यवस्था करने वाला है, अपने लिए पूरा महत्व रखता है वह सब में ही ती है। मैं अपने आपकी शरणमें आकं तो मुझे हित मिल सकता है और मैं अपनी शरणको छोड़कर, अपने ज्ञानस्वरूपको छोड़कर बाहरी चीजोंमें संगृ तो केरी ऐसी ही घटनायें, जब भरण करना बना रहेगा जहाँ मेरा कुछ भी हित नहीं है।

अपने अपनी ऐसे करो जाए जहाँ वह नहीं है। जो हित रूप है, शरण—रूप है, सर्व व्यवस्था करने वाला है, अपने लिए पूरा महत्व रखता है वह सब में ही ती है। मैं अपने आपकी शरणमें आकं तो मुझे हित मिल सकता है और मैं अपनी शरणको छोड़कर, अपने ज्ञानस्वरूपको छोड़कर बाहरी चीजोंमें संगृ तो केरी ऐसी ही घटनायें, जब भरण करना बना रहेगा जहाँ मेरा कुछ भी हित नहीं है।

अपने अपनी ऐसे करो जाए जहाँ वह नहीं है। जो हित रूप है, शरण—रूप है, सर्व व्यवस्था करने वाला है, अपने लिए पूरा महत्व रखता है वह सब में ही ती है। मैं अपने आपकी शरणमें आकं तो मुझे हित मिल सकता है और मैं अपनी शरणको छोड़कर, अपने ज्ञानस्वरूपको छोड़कर बाहरी चीजोंमें संगृ तो केरी ऐसी ही घटनायें, जब भरण करना बना रहेगा जहाँ मेरा कुछ भी हित नहीं है।